CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

महात्मन्

अविद्याव्यक्तजाते वै यद् बीजं क्रामकर्मणी ।
ज्ञानशक्ति - क्रियाशक्ति - दलद्वयसमन्वितः ॥
ब्रह्मापरो यदंकूरः स मायोपहितेश्वरः ।
करणविषयो रागो यस्य नूतनपल्लवाः ॥
तृष्णा यस्य जलासेकः स्कन्धशाखा दशासवः ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि रसो वै यस्य वेदना ॥
यज्ञदानतपश्चर्याः कुसुमानि च यस्य वै ।
इन्द्रियाणि यदग्राणि यन्मूलं ब्रह्म शाश्वतम् ॥
वसति यस्य शाखायां जीवरूपो विहङ्गमः ।
दुःखरूपं फलं भुङ्क्ते मोहितः सन्नहर्निशम् ॥
सोऽयं संसारवृक्षो मे विशालोऽतिविचित्रकः ।
शुचिव्रता यतीन्द्रा भो परब्रह्मपरायणाः ॥
युष्माकं ब्रह्मतेजोभिर्भस्मीभूतो भवेद् ध्रुवम् ।
चेतोऽलिर्मे पदाब्जे वः सदा चरतु यत्नतः ॥
तप्तायोगतवारिबिन्दुसदृशे तापत्रयोत्तापिते ।
जीवातौ क्षणभङ्गुरे सुखलवग्रासौ निराशोऽधुना ॥
ब्रह्मात्मैक्यमतौ भवभ्रममपाकृत्य स्थितिं शाश्वतीं ।
सम्प्रेप्सुश्चिरशान्तयेऽस्मि शरणं सन्न्यासमार्गं श्रितः ॥
प्रभासपत्तनस्थितशारदाख्यमठाधिपः ।
[illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वामी श्रीशङ्कराचार्यः शान्तो दान्तश्च निस्पृहः ।
रिव्राड् योगयुक्तश्च श्रीमांश्च धर्मरक्षकः ॥
एडी परमहंसो यः पश्चिमाम्नायशासकः ।
रूपानन्दतीर्थाख्यो जगद्गुरुः कृपापरः ॥
र्व्वसंशयसंछेत्ताऽनलसो यतिराडसौ ।
सारमोहसिन्धोर्मां समुद्धर्त्तुमिहागतः ॥
तवांश्च तदाज्ञप्तो यतीन्द्रा भो यथाविधि ।
र्याश्रमविधानोक्तमनुष्ठानं समाहितः ॥
ाङ्गतासिद्धये तस्य श्रीनारायणप्रीतये ।
मत्तुर्याचे नतोऽहञ्च साम्प्रतं वः पदाब्जयोः ॥
ो ब्रह्मज्ञास्तत्त्वमस्यादिरुपं
ब्रह्मज्ञप्त्यै यन्महावाक्यमस्ति ।
ाशीर्वाग् वस्तत्समा द्वैतहन्त्री
ब्रह्मात्मैक्यज्ञानमद्धा तनोतु ॥

विनयावनतः

श्रीसोऽहं तीर्थस्वामी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

स्वामी. दयानन्द सरस्वती

ॐ. सर्वं खल्विदं ब्रह्म।

ॐ. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात परंब्रह्म, तस्मै श्री. गुरुवे नमः॥

ॐ मंत्र मूलं गुरु वाक्यं, पूजा मूलं गुरोपदम्।
ध्यान मूलं गुरो र्भिक्षो मुक्ति मूलं गुरोः कृपा॥

ॐ ईश्वरो गुरुरात्मेति मूर्तिभेद विभागिने।
व्योमवत्व्याप्त देहाय दक्षिणा मूर्तये नमः॥

ॐ अखंड मंडलाकारं व्याप्तंयेन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

ॐ ~~गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुर्साक्षात परंब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।~~
~~पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते॥~~

ॐ - पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्ण मादाय पूर्ण मेवाव शिष्यते॥

ॐ - सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्त कहहिं असनीति प्रभु, श्रुति पुराण जो गाव।
होइ न विमल विवेक उर - गुरु सन किये दुराव॥

श्लोक = गुरवो बहवः सन्ति शिष्य वित्तापहारकाः।
दुर्लभोऽयं गुरुर्देवि! शिष्य सन्तापहारकः॥
अर्थ हे देवी बहुत से गुरु हैं जो शिष्य का धन छीनते हैं, हे देवी ऐसे गुरु दुर्लभ हैं जो शिष्य के संताप को हरते हैं।

जैसो चन्दा उगवहि, सूरज चढ़ै हजार।
एते चाँदन नित करें - गुरु बिन घोर अँधियार॥ अंधार॥
जैसो चन्दा उगवहि सूरज कोटि हजार॥
एते मिली चांदन करें - गुरु बिन घोर अंधार॥

योग तात्पर्य से गुरुवन्दना

बन्दे गुरुणां चरणार विन्दे, सन्दर्शित स्वात्म सुखावबोधे।
निः श्रेयसे जाङ्गलिकायमाने संसार हालाहल मोहशान्त्यै॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

ॐ सर्वं खल्विदं ब्रह्म ॥ ये सब ब्रह्म ही है

सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः

अर्थ. ब्रह्म सत्य है. जगत मिथ्या है जीव भी ब्रह्म से अतिरिक्त नहीं है।

सर्व कामान् परित्यज्य प्रद्वैते मरमे स्थितः ।

यत्किञ्चित्पश्यतो भेदं. भयं वृते यजुः श्रुतिः ॥

अर्थ. सब इच्छा प्रेक्षा त्याग करके प्रद्वैत में रमण करो जो कुछ देख रहे हो उसमें भेद करना भय का कारण है।

यत्परं ब्रह्म सर्वात्मा विश्वस्यायतनं महत् ।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं. त्वमेव त्वमेव तत् ॥

अर्थ- जो ब्रह्म संसार का कारण है. व सूक्ष्म से सूक्ष्मतर वही तू है

अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं, जन्म पाप विनाशयेत ।

अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं. मृत्यु पाशं विनाशयेत ॥

अर्थ - अहं ब्रह्मास्मि मंत्र जन्म के पापों का नाशक है।

अर्थ. अहं ब्रह्मास्मि मंत्र - मृत्यु के फांसी से बचाता है

अर्थात आवागमन से छुटकारा दिलाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

~~अहं ब्रह्मास्मि मंत्रोऽयं मृत्युनाशं विमर्शयेत्~~

1 एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मने हनानास्ति किञ्चन।

2 सर्वं खल्विदं ब्रह्मने हनानास्ति किञ्चन॥

3 एकब्रह्म द्वितीयो नास्ति।

4 त्रभेद दर्शने ज्ञानं यतो वाचो निवर्तन्ते त्रप्राप्य मनसा सह॥

(1) अर्थः एकही अद्वितीय ब्रह्म है और कुछ नहीं है।

(2) अर्थ सब ब्रह्म ही है और कोई भिन्न वस्तु नहीं है।

(3) अर्थः एक ब्रह्म के सिवा दूसरा कोई नहीं।

(4) भेदभाव छोड़ना ज्ञान है, जहां वाणी लौट आती है जहां मन का मन नहीं कला और इनका आधार है वही ब्रह्म है।

त्रानन्दं ब्रह्मणो विद्वान् नबिभेति कुतश्चनेति।
प्रपञ्च मखिलं य स्तु ज्ञानाग्नौ जुहुयाद्यतिः॥

अर्थः ब्रह्मानंद को पाकर विद्वान कभी भय भीत नहीं होता, विद्वान प्रपञ्च को ज्ञान में आहुति रूप कर देता है।

आत्मन्यग्नीन्समारोप्य सोऽग्निहोत्री महायतिः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मैवाहमिति प्राहुर्मुनयः पारदर्शिनः।
अर्थ- ब्रह्मज्ञानी मुनि कहते हैं सब ब्रह्म ही ब्रह्म है।
ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।
अ-

ब्रह्मवित्परमाप्नोति तरति शोकं चात्मवित्।
अर्थ- ब्रह्मवेत्ता ब्रह्म को पाता है और शोकहीन हो जाता है।

देहत्रयादि रिक्तोऽहं शुद्धचैतन्य मस्म्यहम्।
अर्थ- मैं देहत्रयी से रहित शुद्धचैतन्य हूं।
ब्रह्माहमिति यस्यान्तः स जीवन्मुक्त उच्यते"
जो- अपने को ब्रह्म समझकर शांत रहता है वह ज्ञानी है।

तुषेण वृतो व्रीहिः स्यात्तुषाभावे न तण्डुलः।
अर्थ- भूसे से मिला हुआ अन्न तण्डुल और साफ होने पर चावल
इसी तरह बंधा हुआ जीव और मुक्त ब्रह्म हो जाता है।
एवं बद्धस्तथाजीवः कर्म नाशे सदा शिवः।
अर्थ- इसी प्रकार बंधा जीव और कर्मों के क्षीण होने पर शिव (ब्रह्म) हो जाता है।

पाशबद्धस्तथाजीवः पाश मुक्त सदाशिवः
अर्थ- फांसी से बंधा हुआ जीव, इच्छा से रहित शिव (ब्रह्म) है।
शिवाय विष्णु रूपाय शिव रूपाय विष्णवे।
अर्थ- शिव विष्णु रूप है और विष्णु शिव रूप है याने दोनों में भेदभाव नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अत्रायम् पुरुषः स्वयं ज्योतिर्भवति ।

अर्थ- पुरुष की स्वयं ज्योति स्वरूप होना है ।

ब्रह्मैवेदम् सच्चिदानन्द मात्रं ॥

अर्थ- अतः सच्चिदानंद स्वरूप है

वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।

अर्थ नाम वाणी का विकार है मिट्टी ही सत्य है घड़े में मिट्टी ही सत्य है

कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः ॥

अर्थ= कार्य के उपाधि से जीव और कारण के उपाधि से ईश्वर कहा जाता है ।

बन्धो मुक्त इति व्याख्या गुणतो मेन वस्तुतः ।

गुणस्य माया मूलत्वान मे मोक्षो न बन्धनम् ।

अर्थ= श्रीभगवान कहते हैं कि हे उद्धव गुणों की उपाधि से ही मुक्त आत्मा को बद्ध या मुक्त कहा जाता है और गुण माया मूलक है । वास्तव में मुक्त आत्मा में न बद्ध है न मोक्ष है । - गीता में कहा है —

(ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्) इस वाक्य से भी अभेद है क्योंकि आत्मा एक है भेद केवल उपाधि मात्र कल्पित है कल्पित वस्तु मिथ्या है । अवधूतोपनिषद में लिखा है ।

न विरोधो नचोत्पत्तिर्न बद्धो नच साधकः ।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ. आत्मा में न कोई विरोध है न कोई उत्पत्ति है. न बुद्ध है. न साधक है न मोक्ष की इच्छा है. न मुक्त है सब से विलक्षण परमार्थ वस्तु आत्मा ऐसा है। (मनजीकाव्यनाद्य में) कहते

सर्व भूतस्थ मात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि।
सम्पश्यन्नात्मया जो वै स्वाराज्य माप्नोति॥

अर्थ. समस्त भूतों में स्थित अपने आत्मा को और समस्त भूतों को अपने आत्मा में देखता हुआ आत्म मग्न करने वाला पुरुष स्वराज्यात्मक है॥ विष्णुपुराण में लिखा है.

यदा समस्त देहेषु पुमानेको व्यवस्थितः।
तदादि को भवान् सोऽहमित्येतादृक फलं वचः॥

अर्थ: जबकि समस्त देह एक पुरुष व्याप्त है तब आप कौन हैं मैं अमुक हूं. यह कहना व्यर्थ है.

श्लोक = सकल मिदं महंच वासुदेवः परम पुमान परमेश्वरः
एकं इति मति रचला भवत्यनन्ते हृदयगते व्रजनिलाय
तान्दूरात्॥

अर्थ: यमराज अपने दूतों से कहते हैं कि यह सम्पूर्ण संसार और मैं एकमात्र परम पुरुष परमेश्वर वासुदेव ही हैं. जिनकी दृढ़ हृदयस्थ उन अनन्त भगवान में - ऐसी दृढ़ भावना होगई है. इन्हें तुम दूर से ही छोड़ कर निकल जाना।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोहा:- प्रभु जल-निधि मैं बीचि हूं, तुम रवि-शशि मैं कांति।
हरि विभावसु मैं तेज हूं, कहा द्वैत की भ्रांति॥
प्रभु पानी मैं बर्फ हूं, हरि भृङ्गी मैं कीट।
भेद तुम्हारो है नहीं, ज्यों मृतिका अरु ईंट॥
ज्यों पय मध्ये घीव है, त्यों रमि रहा सब ठौर।
श्रोत्रा वक्ता बहु मिले, माथे का ढेलो और॥

छन्द

जप करै तप करै किसी से न द्वेष करै।
हरि को भजन करि धर्म करतु है।
पूजा करै पाठ करै, आतमा विचार करै।
गुरुजी का ध्यान धरि आनन्द भरतु है॥
इन्द्रिय को वश करि मन को दमन करि,
साधु संगत करि धीरज धरतु है।
कहैं निर्द्वन्द्व तुम सुनिए मुमुक्षुजन
ऐसा जो करै सो भव सागर तरतु है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धर्मं चर मा ऽधर्मम्। धर्मका आचरण करो. अधर्मका आचरण मत करो।
सत्यं वद तनृ ऽनृतम्। सत्य बोलो. झूठ न बोलो।

शुद्धानन्द पदाम्भोज द्वन्द्व मद्वन्द्व तास्पदम्।
नमस्कुर्वे पुरस्कर्तु तत्त्व ज्ञान महोदयम्॥

अर्थ. शुद्धानंदजीके चरण कमलको द्वन्द्वका नाश और तत्त्वज्ञानके प्राप्ति के लिये. नमस्कार करते हैं.

निश्वसितमस्य वेदा, वीक्षितमेतस्य पञ्चभूतानि।
स्मित मेतस्य-चराचर मस्य-च सुप्तं महाप्रलयः॥

अर्थ. जिसके वेद स्वांस है. पंचभूत और जो पंचभूतोंको देखता है, जो चराचर है. उसका मंद हांस है. और सोना उसका महाप्रलय है।

श्रुतिस्मृति पुराणानामालयं करुणालयम्। नमामि भगवत्पादं शङ्करं लोकशङ्करम्॥

अर्थ. जो वेद और पुराणोंका घर और करुणाके धाम है. ऐसे लोकका कल्याण करनेवाले श्री शंकराचार्यको नमस्कार करता हूं।

भवानी कवितीकर्णे बालेन्दु रसमन्दाकिनी युता।
अपवर्ग रचिता मूर्ति रपवर्ग प्रदायिनी॥

अर्थ. पार्वतीसूर्य, चन्द्रमा भस्म और गंगा रूप अपवर्गको धारण करनेवाले होने परभी भगवान शंकर अपवर्गके दाता है. (पाने मोक्षके दाता है।

नत्वा नारायणं देवं वन्देऽहं कामदं विभुम्। लीलयावितनोयेन विश्वं तस्मै नमोनमः

अर्थ = मनोरथको पूर्ण करनेवाले लीला शरीर धारी भगवान नारायणको प्रणाम करो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोकार्धेन प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ग्रन्थ कोटिभिः

परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीडनम्।

अर्थ = जो बातें कोटिकोटि ग्रंथों में बताई हैं उसे आधे श्लोक में बता
परोपकार से पुण्य और दूसरों को दुःख पहुंचाने से बढ़कर कोई
पाप नहीं है

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते।

नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभायहि स्मृतः

अर्थ- धर्म और मोक्ष का अर्थ कोई धन साधन से नहीं होता।
अर्थ का और मूल धर्म की इच्छा भी किसी अन्य लाभ के लिये नहीं
होता।

कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता

जीवस्य तत्त्व जिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः।

अर्थ- जब तक मनुष्य जीता है तब तक काम द्वारा इन्द्रियों की तृप्ति
होती किन्तु मनुष्य के लिये तत्त्व जिज्ञासा है (ऐसा शास्त्र
है जो सब तत्त्वों से प्रत्यक्ष कराना चाहते हैं)

विपदो नैवविपदः संपदो नैव संपदः

विपद्धि स्मरणं विष्णोस्संपन्नारायण स्मृतेः।

अर्थ = विपत्ति तो सम्पत्ति भगवान को भूल जाने और याद
करने से अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहिंसा सत्य मस्तेय मकाम ~~क्रोध~~ क्रोध लोभता
प्रियाहितार्थेश्च धर्मोऽयं सार्व वर्णिकः । वर्णिकः
(अहिंसा सत्य अस्तेय (चौर्यनहीं) इच्छा क्रोध, और लोभ का अभाव
सब प्राणियों को हितानुष्ठान ये सब वर्णों का धर्म है।

विद्वद्भिः सेवितः सद्भिर्नित्य मद्वेष रागिभः,
हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत ।
जो विद्वान लज्जन द्वारा रागद्वेष से रहित तथा हृदय को प्यारा लगने वाला
जो धर्म है उसे समझो।

२. तां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत ।
धर्म का सार सुनलो। सुनकर याद करलो कि अपने से प्रतिकूल
कोई इसरों के लिये न करो। अर्थात जो बात अपनेको दुःखदायी
मालूम हो ऐसे दूसरों के लिये न करे।

वन्दामहे यतीन्द्राणां जाह्नवी तीर चारिणाम ।
ईश्वरानंद तीर्थानां चरणाम्बुज मन्वहम ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देहेऽस्थि मांस रुधिरे ऽभिमतिं त्यजत्वं
जाया सुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च । सुनादिषु.
पश्यानिशंजगदिदं क्षण भङ्ग निष्ठं ।
वैराग्य राग रसिको भव भक्ति निष्ठः ।।

अर्थ इस देहमें जिसमें हड्डी चर्बी मांस है तुम अपना स्वयं का छोड़ दो इस पर विचार करो । स्त्री और पुत्रों आदि में ममता रहित बनो जिस प्रकार कमल । सब जगत को सदा क्षण भंगुर समझो और सबमें से श्रेष्ठ त्याग कर वैराग्य रस से रसिक बनो ।

धर्मं भजस्व सततं त्यज लोक धर्मान् ।
सेवस्व साधु पुरुषा ञ्जहि काम तृष्णाम् ।
अन्यस्य दोष गुण चिन्तन माशु मुक्त्वा ।
सेवा कथा रस महो नितरां पिबत्वम् ।।

अर्थ दुनियां के व्यवहारों को छोड़ के धर्म का सेवन करो ।
साधु पुरुषों की संगति करके काम तृष्णा का त्याग करो ।
दूसरों के गुण दोष के विचारों को जल्दी छोड़ के प्रभु की सेवा कथा रस सदा पीते रहो ।
हे जिह्वे रस सारज्ञे - सर्वदा मधुर प्रिये ।
नारायणास्य नीयूषं - पीत्वे जिह्वे निरन्तरम् ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्ताम् ।
न्यायेन मार्गेण महीं महीशाः ।
गौब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यम् ।
लोकाःसमस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥

अर्थ (~~संसार के समस्त धार्मिक कर्म की वृद्धि करो~~)
समस्त प्रजाके लिये कल्याण का चाहनेवाले हों। और
राजा लोग न्यायसे पृथ्वीकी रक्षाकरें। और ब्राह्मणोंका
हमेशा भला हो। सारे संसारके लोग सुखी हों।
सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत्

नमस्ते सते ते जगत्कारणाय ।
नमस्ते चिते सर्व लोकाश्रयाय ।
नमो द्वैत तत्त्वाय मुक्ति प्रदाय ।
नमो ब्रह्मणे व्यापिनेशाश्वताय ॥

अर्थ आप सब जगतके कारण हैं इसलिये नमस्कार हो
आपको चिद्रूप हैं (क्रियारूप हैं गतिरूप) आप सब लोक
के आत्मा हैं इसलिये आपको नमस्कार आप अद्वैत के
तत्त्व हैं (वेदान्त के तत्त्व हैं) और मुक्ति के देनेवाले हैं
आप व्यापक और नित्य रूप हैं इसलिये नमस्कार

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वमेकं शरण्यं त्व मेकं वरेण्यम् ।
त्वमेकं जगत्पालकं स्वप्रकाशम् ।
त्वमेकं जगत्कर्तृ पातृ प्रहर्तृ ।
त्वमेकं परम निश्चलं निर्विकल्पम् ॥

तू एक ही शरण है
तू ही श्रेष्ठ है ।
तू ही जगत का पालक
और स्वयं प्रकाश
है । तू ही जगत का
रक्षक और कर्ता और संहारक है । तू ही निश्चल और
निर्विकल्प है ।

विष्णुर्वा त्रिपुरान्तको भवतु वा ब्रह्मासुरेन्द्रोऽथवा ।
भानुर्वा शशलक्षणोऽथ भगवान बुद्धोऽथ सिद्धोऽथवा ॥
रागद्वेष विषादि मोह रहितः सत्वानु कंपोद्यतो ।
यः सर्वैः सह संस्कृतो गुण गणैस्तस्मै नमः सर्वदा ।

अर्थ - चाहे विष्णु हो या त्रिपुरान्तक हो या इन्द्र चाहे सूर्य
चन्द्रमा हो अथवा बुद्ध हो भगवान हो । जिसका रागद्वेष
विषाद दुःख आदि से रहित अनंत गुणों से सहित सत्व गुण
और समता भाव हो - जो इन गुणों से शोभित है उसको मेरी वन्दना हो ।

हे जिह्वे रस सारज्ञे सर्वदा मधुर प्रिये ।
नारायणाख्य पीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभामतिः।
भवन्ति कृत पुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे॥

अर्थ - क्रोध मत्सर्य लोभ और अशुभ बुद्धि उन पुण्य
मानवों को नहीं होती जिनकी वृत्ति भगवान में है।

त्वं पदार्थ विवेकाय सन्यासः सर्व कर्मणाम्।
श्रुत्या विधीयते यस्मात् तत्त्यागी पतितो भवेत॥

श्रुत्या। त्वं पदार्थ के विवेक के लिये सर्व कर्मों का त्याग करना
जाना है क्योंकि वेद का विधान है यहि उस का नित्य
करे तो वह त्यागी पतित होता है।

श्रीरामजी ने हनुमानजी से पूछा कि तू कौन है कर्मी है या भक्त है या ज्ञानी है
हनुमानजी बोले
देहे दृष्ट्या तु दासोऽहं - जीव बुद्ध्या त्वदंशकः।
वस्तु वस्तु तदेवाहमिति मे निश्चिता मतिः॥

अर्थ - अर्थात देह दृष्टि से मैं दास हूं (कर्मेन्द्रिय तथा शरीर प्रत्यक्ष से वाक रहते)
जीव बुद्धि से अर्थात अन्तःकरण उपाधि से आपका एक अंश हूं।
और - वास्तव में तो मैं ब्रह्म ही हूं। यह मेरा निश्चय सिद्धान्त है।
(इसमें यह प्रमाण श्री हनुमन्नाटिका अद्वैत सिद्धान्त)
ब्राह्मणस्याहि देहोऽयं - क्षुद्र कामाय नेष्यते।
कृच्छ्राय तपसेज्याच्च प्रेत्यानन्त सुखाय च॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक = परोपकार कैवल्ये · तीर्त्वे इत्वा जनार्दनः

गरा गुरुविंग उपकृति मत्वा अवतारा इव दशागृहीत ।
उमविंग-वजनदार ॥

श्लोक = शुद्धं बुद्धं प्रियङ्ग पुष्पाभं निष्प्रपञ्चम् नित्यम
आत्मानङ्ग तङ्ग नजानीति, तत्रा अभ्यास परायणा ॥

श्लोक = शास्त्र वाक्येषु विश्वासो गुरु पादाब्ज सेवनम्
भक्ति विष्णो शिवोवापि जोगस्य सिद्ध हेत वः
शिवाय विष्णुरूपाय · शिव रूपाय विष्णवे ॥

श्लोक = भवानी शंकरौ वन्दे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ ।
या भ्यां विना न पश्यन्ति = सिद्धा स्वान्तः स्थमीश्वरम्
भवानी और शंकर जो श्रद्धा विश्वास की मूर्ती हैं उन के प्रति मैं
वन्दना हैं क्योंकि अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को सिद्ध लोग इन के बिना
श्लोक - अंकस्य ॐकार विन्दु संयुक्त नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः ॥
इनके बिना कभी भी श्रद्धा और विश्वास के बिना सिद्धादि
दुर्लभ हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ज्ञानतो ऽज्ञानतो वापि, यत्किञ्चित् कुरुते नरः।
तत्सर्वं भगवानेव - कुरुते योग माययाः॥

अर्थ - ज्ञानसे व अज्ञानसे जो कुछ मनुष्य करता है वह सब योगमाया से भगवानही करतेहै ऐसा समझना चाहिये॥ जिस प्रकार मंत्र के द्वारा मनोकामना पूर्ण होती है उसी प्रकार ईश्वर भी

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन सर्वभूतानि - यंत्रारूढानि मायया॥

अर्थ - हे अर्जुन ईश्वर सब प्राणीयों के मध्य में यंत्रारूढ की भांति अपनी माया से अपने कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ प्राणियों के हृदय में स्थित है

यथा मंत्रे तथा देवे - यथा देवे तथा गुरौ। (गौतमीय तंत्रे)
एषभेदमतो मंत्री - एवं भक्तिं क्रमो मुने॥

अर्थ - मंत्र देवता और गुरु में अभेद ज्ञान रखना चाहिये ऐसा मुनिभट्टीमाके कहा है

श्लोक - देवे तीर्थे द्विजे मन्त्रे - दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
या दृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥

ज्ञानके दस लक्षण

श्लो॰ अक्रोध वैराग्य जितेन्द्रियत्वं क्षमा दया शान्तिजनः
प्रियत्वं, निर्लोभदाता भय शोक रहिता
ज्ञानः प्रमोदानि दस लक्षणानि॥

अर्थ क्रोधन करना वैराग्य, इन्द्रजीत, क्षमा, दया, शांती प्राणिमात्र मैत्रेक, और लोभरती करना दानशा करना, भयशोकसे रहितपना, मेज्ञानीपुरुषोंके ये दस लक्षण हो.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभ मतः पुँस्त्वं ततो विप्रता।
तस्मात् वैदिक धर्म मार्ग परता विद्वत्व मस्मात् परम्।
आत्मानात्मा विवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति-
र्मुक्तिर्नो शत कोटिजन्म सुकृतैर्पुण्यैर्विना लभ्यते॥

श्लोक साधु { तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्व देहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधु भूषणाः॥

श्लोक: अवश्य मेव भोक्तव्यं. कृतं कर्म शुभाशुभम्।
ना भुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटि शतैरपि॥

श्लोक: नृदेह माद्यं सुलभं, सुदुर्लभं,
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्ण धारम्
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं,
पुमान्भवाब्धिं न तरेत्स आत्महा॥

अर्थ: जो परम दुर्लभ नर देह रूपी दृढ़ नौका को पाकर तथा गुरु रूपी कर्णधार और ईश्वर कृपा रूपी अनुकूल वायु पाकर भी जो प्राणी जो इस भवसागर से पार न हो वह आत्महत्या का भागी होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक.

गजाननं भूत गणाधिसेवितं, कपित्थ जम्बू फल चारु भक्षणम्
उमा सुतं शोक विनाश कारकं · नमामि विघ्नेश्वर पाद पंकजम्॥

जीवात्मा स्वल्पं जानाति, कर्म बन्धेन बध्यते।
जीवात्मा पूर्णं जानाति. पुनर्जन्म न विद्यते। (योगक्षेम)

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था, विश्वम्भरा पुण्यवती च तेन।
अपार संवित सुख सागरेऽस्मिन्. लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

अर्थ: अनन्त ज्ञान और आनंद के समुद्र रूप इस परब्रह्म में जिसका चित्त लीन हो गया है. उसने अपने कुल को, पवित्र कर दिया. उसकी माता कृतार्थ (सफल) हो गयी और उससे पृथ्वी. पुण्यवती हो गई।

दुर्लभो विषय त्यागः, दुर्लभं तत्व दर्शनम्।
दुर्लभा सहजावस्था. सद्गुरोः करुणां विना॥

अर्थ - सद्गुरु की कृपा बिना. विषयत्याग, तत्वदर्शन और सहजावस्था ये तीनों दुर्लभ हैं।

सर्वे भवन्तु सुखिनः — सब सुखी हों
सर्वे सन्तु निरामयाः — सब रोग मुक्त हों।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु — सब कल्याण ही कल्याण देखें.
मा कश्चिद् दुःख भाग-भवेत — और किसी को जरा भी दुःख प्राप्त न हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महावाक्य.

प्रज्ञानं ब्रह्म (महानंदब्रह्म) अर्थात आनन्दस्वरूप प्रज्ञानघन (आत्मा) ब्रह्म है।
यह ऋग्वेद का महा वाक्य है।

अहं ब्रह्मास्मि. - अर्थात मैं ब्रह्म हूं.. यजुर्वेद का महावाक्य है।

तत्त्वमसि - अर्थात वह (परमात्मा) तू - ~~ब्रह्म है~~ जीव यह
सामवेद का महावाक्य है

अयमात्मा ब्रह्म = अर्थात यह आत्मा ब्रह्म है यह अथर्ववेद का
महावाक्य है

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म = असत्य जड तथा शांतस्वरूपसंसार से भिन्न
अर्थात सत्यज्ञान और अनन्त स्वरूप ब्रह्म है इत्यादि

महावाक्य - जो आत्मा और परमात्मा की एकता को प्रतिपादन करते
उसे महावाक्य कहते हैं।

(आत्मा वै परमं ब्रह्म. आत्मा वै परमं ~~शांति~~ तपः
आत्मा वै परमं शांतिः - आत्मानं तत्परायणं ॥ ~~१०~~

न योगो नभसः पृष्ठे न भूमौ न रसातले।
ऐक्यं जीवात्मनो परमात्मनो योगं विदुर्बुधाः॥
अर्थ - योग स्वर्ग में नहीं है, भूमि पर नहीं है न रसातल में है।
योग के जानने वाले जीवात्मा और परमात्मा की एकता साधन
को योग कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ

तत्त्व बोध

वासुदेवेन्द्रयोगीन्द्रं नत्वा ज्ञान प्रदं गुरुम।
मुमुक्षूणां हिताथाय तत्त्वबोधोऽभिधीयते।

मोक्ष की प्राप्ति के चार प्रकार के उपायों के साधन वाले मोक्ष के अधिकारी होते हैं.

साधन-चतुष्टयं किम = मोक्ष के चारो साधन कौन हैं.

नित्यानित्य वस्तुविवेक: = नित्यपदार्थ और अनित्यपदार्थ का भिन्न ज्ञान।

इहामुत्रार्थ फलभोगविराग। = इसलोक के और परलोक के पदार्थ और उनसे होनेवाले फलों में वैराग

शमदमादिषट्क सम्पत्ति: = शमदम आदि छः पदार्थों का सम्पादन।

मुमुक्षुत्वं चेति = मोक्ष की इच्छा होना। ये ही चारों साधन हैं

अर्थ = मोक्ष की प्राप्ति के चार साधन हैं।

(१) विवेक = नित्य अनित्य पदार्थ में विचार।

(२) वैराग = इसलोक और परलोक के पदार्थों से वैराग

(३) शमदमादि = शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा = समाधान। छ ओं पदार्थों को जानना

(४) मुमुक्षुता = मेरी मोक्ष हो (मोक्षपद की इच्छा)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नित्यानित्यवस्तु विवेकः कः ?	नित्य अनित्य पदार्थ का विवेक किसको कहते हैं ?
नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म	नित्य पदार्थ केवल ब्रह्म है
तद्व्यतिरिक्तं सर्वमनित्यम्	बाकी सब अनित्य मिथ्या है अर्थात भूठ है
अयमेव नित्यानित्यवस्तु विवेकः	इसी ज्ञान को नित्यानित्य वस्तु विवेक कहते हैं
विरागः कः ? इहस्वर्गभोगेषु इच्छा राहित्यम्	विराग किसे कहते हैं ? इस लोक और परलोक के पुत्र आदि भोगों की इच्छा का त्याग करना - वासनों को त्याग इसीको वैराग्य कहते हैं ।
शमः किसको कहते हैं	मन रोकने को शम कहते हैं
दम का अर्थ क्या है	नेत्र, कर्ण, जिह्वा घ्राण, और त्वचा आदि बाहरी इन्द्रियों के रोकने को दम कहते हैं । अर्थात ज्ञान इन्द्रियों को
उपरति (उपरम)	अपने निज धर्म का अनुष्ठान करना, शब्द आदि (~~रस रूप गंध~~ शब्द स्पर्श, रूप रस, गंध) आदि विषयों से इन्द्रियों को रोककर और सब लोक के पदार्थों को विचारों से हटाकर केवल आत्म विचार में तत्पर रहना इसे उपरम कहते हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तितिक्षा किसे कहते हैं { शीत, उष्ण, मान, अपमान आदि को धैर्य से सह लेना। इसे तितिक्षा कहते हैं।

श्रद्धा किसे कहते हैं। { गुरु के वाक्यों को और वेदान्त के वाक्यों को विश्वास पूर्वक यथार्थ समझना श्रद्धा कहलाता है।

समाधान— { चित्त की एकाग्रता को अर्थात् चित्त एकाग्रता प्राप्त हो इसी को समाधान कहते हैं।

शम, दम, उपरम, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान ये इनको शम दम आदि छः साधन कहते हैं।।

मुमुक्षुत्व का क्या अर्थ है { मेरी मोक्ष होवे ऐसी इच्छा का होना अर्थात् संसारी दुःखों का संयोग न होवे, इस इच्छा वाले को मुमुक्षु कहते हैं।

ये चारों मोक्ष के साधन हैं अर्थात् (विवेक, वैराग, शमदमादि, मुमुक्षुता) इन चारों की साधना से वह तत्व ज्ञान होता है जो महाभूतों से आत्मा को भिन्न कर देता है।

तत्वविवेक किसे कहते हैं = आत्मा सत्य है और उसके सिवाय और जितने जगत के पदार्थ हैं वे सब मिथ्या हैं इसी को तत्व विवेक कहते हैं:

आत्मा किसे कहते हैं { स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर से अन्य अन्नमय आदि पांचों कोषों से दूर, जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति रूप तीनों अवस्थाओं का साक्षी होकर, जो सत् चित् आनन्द स्वरूप रहजाता है उसे आत्मा कहते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थूलशरीर किसे कहते हैं। -

पंचीकृत पृथ्वी. जल. तेज, वायु. आकाश. आदि पांचो महाभूतों से कियागया कर्मों के द्वारा उत्पन्न. सुख दुख आदि के भोगने का प्रधान आश्रय, नाश होनेवाली और स्थिति उत्पत्ति. वृद्धि घटना बढ़ना. ढोला पड़ना और नाश होना छहों विकार वाला स्थूल शरीर है।

अर्थात - अस्ति. जायते, वर्धते विपरितमते. अपक्षीयते विनश्यति। स्थूल शरीर के लक्षण हैं।

पंच ज्ञान इन्द्रियां
जाग्रत अवस्था = श्रोत्र, त्वक, नेत्र, रसना घ्राण ~~इन्द्रि~~ इन्द्रियों से - जब - शब्द स्पर्श रूप रस गंध का ज्ञान होता है उसे जाग्रत अवस्था कहते हैं। स्थूल शरीर में रहे यह अभिमान करने वाला आत्मा विश्व कहलाता है.

यद्यपि स्थूलशरीराभिमानी आत्मा अपनी अवस्था से भिन्न ही है। क्योंकि वह नित्य है और उसकी अवस्था तथा - स्थूल शरीर मिथ्या है। तोभी स्थूल शरीर का अभिमान करनेवाला आत्मा का नाम विश्व पड़जाता है.

श्लोक - कामजानामि ते मूलं. संकल्पाद्धि जायसे
अतोन संकल्पयामित्वां. यतो पुननभविष्यसि ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूक्ष्मशरीर = अपंचीकृत पृथ्वी आदि पांच तत्वोंसे महाभूतोंसे बना। कर्मों से उत्पन्न सुख दुख आदि भोगों का साधन। पांच ज्ञान इन्द्रियां, पांच कर्म इन्द्रिय। पांच प्राण मन और बुद्धि। इन सत्रह कलाओं से युक्त रहता है उसे सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

अर्थात = सूक्ष्मशरीर में पंच महाभूतों के पच्चीस भाग नहीं होते। कर्मों का सहायक है। वह सुख दुख का भोगने वाला है उसमें नेत्र, कर्ण, त्वचा नासिका और स्पर्श इन्द्रियां रहती हैं। वाक, हस्त, पाद, गुदा, उपस्थ भी रहते हैं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान आदि पांच प्राण भी रहते हैं। मन और बुद्धि भी रहती है। इन सत्रह कला वाले को सूक्ष्म शरीर कहते हैं।

स्वप्नावस्था = जागते हुए जो कुछ दिखता है, वा जो कुछ जाना जाता है। उससे आत्मा में एक प्रकार की वासना उत्पन्न होती है। निद्रा लग जाने पर इसी वासना के प्रभाव से जो संसार देख पड़ता है, वही स्वप्न अवस्था है। उसी को कोई सूक्ष्म शरीर के अभिमान करने वाला प्रकाशमान भोक्ता और साक्षी आत्मा को तेजस कहते हैं।

स्वप्न अवस्था में अभिमान करने वाला सूक्ष्मशरीरी प्रकाशमान आत्मा भोक्ता तेजस कहलाता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारणशरीरको अनिर्वाच्य और अनादि अविद्या रूप जो स्थूल व सूक्ष्म शरीर का केवल कारण है. जो सत्स्वरूप अज्ञान है. और जिसमें किसी विशेषता का ज्ञान नहीं होता उसे कारणशरीर कहते हैं। अर्थात माया कारणशरीर है माया अनिर्वचनीय है. अर्थात उसका स्पष्ट अर्थ नहीं हो सकता. न तो उसे सत कह सकते हैं. क्योंकि ब्रह्मज्ञान के होने पर उसका नाश हो जाता है। न उसे मिथ्या ही कह सकते हैं। क्योंकि उससे फिर जगत की उत्पत्ति भी नहीं हो सकती. यही माया सूक्ष्मशरीर और स्थूलशरीर का कारण है इसे सत्स्वरूप अज्ञान कहते हैं। इसे अतएव महाकारण-शरीर कहते हैं।

सुषुप्ति अवस्था किसे कहते हैं। मैं कुछ नहीं जानता मैंने सुख से निद्रा ली. यह ज्ञान जिस अवस्था में हो उसे सुषुप्ति अवस्था कहते हैं। तात्पर्य यह है. कि सुषुप्ति अवस्था में निद्रा सुख के अतिरिक्त और किसी पदार्थ का ज्ञान नहीं होता. तब भी आत्मा का प्रकाश बना रहता है। इस अवस्था को कारणशरीर और आनन्दमय कोश भी कहते हैं. इस विषयों को भोगने वाला आत्मा प्राज्ञ कहलाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्संगति दुर्लभ संसारी निमिष दंड भरि एकौ बारा।

— उत्तरकांड

कामधेनु अरु कल्पतरु जो सेवत फल होय।
सत्संगति छिन एक में प्राणी पावै सोय॥
दया अरिति धर्म सब जप तप संयम दान।
जो प्रापति हत सबनमें लो सतका प्रमान॥
तीरथ गयादिक सबही को निश्चय से बेद।
सौ वर्षों लौ गये प्राणी फल लेवेंगे॥
श्री आदि देवा लक्ष्मी तिनभाजे लो फल तो।
सत्संगतिमें सद्गति योगादि होत उद्योग॥
जगत मोह फांसी अज कटे न भान उपाय।
जो न सत्संगी होवते सद्धा पुरु तो जाय॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बिनु सत्संग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥
सपनें स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तुलै न तार्‌ सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई। राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥
बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सो मो सन कहि जात न कैसें। साक बनिक मनि गुन गन जैसें॥
बंदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बाल बिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥
एहि कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि॥
जासु पतित पावन बड़ बाना। गावहिं कबि श्रुति संत पुराना॥
ताहि भजहि मन तजि कुटिलाई। राम भजें गति केहिं नहिं पाई॥
जौं जौं पावक गोधी। कनक मल जनमान॥
लोक-चन्दनं शीतलं लोके - चन्द्रनादपि चन्द्रमा।
चन्द्र चन्दन योर्मध्ये शीतला साधु संगतिः॥
तत्रैव गंगा जमुना च तत्र गोदावरी सैत्यु सरस्वतिच
सर्वाणि तीर्थानि बसन्ति तत्र यत्रा च्युतोदार कथा प्रसंगः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतः क्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्तूनां नरजन्म दुर्लभमतः ~~पुंस्त्वं~~ पुंस्त्वं ततो विप्रता।
तस्माद्वैदिक धर्म मार्ग परता विद्वत्त्वमस्मात्परम्॥
आत्मानात्म विवेचनं स्वनुभवो ब्रह्मात्मना संस्थिति-
र्मुक्तिर्नेशत जन्म कोटि सुकृतैः पुण्यैर्विना लभ्यते॥

अर्थ = जीवों को मनुष्य का जन्म दुर्लभ है उससे भी पुरुष का देह दुर्लभ है। उससे भी वेदों का अर्थ सहित पढ़न दुर्लभ है। उससे भी वेदोक्त मार्ग में तत्पर होना दुर्लभ है। उससे भी परे विद्वान् होना दुर्लभ है। उससे भी आत्मा अनात्मा का विवेक होना दुर्लभ है। उससे भी अपरोक्ष आत्मा का साक्षात्कार दुर्लभ है। उससे भी ब्रह्म के संग अभेद होकर स्थितिरूप ब्रह्मनिष्ठा दुर्लभ है। ऐसी मुक्ति अनन्त जन्मों के सुकृत निष्काम पुण्यों विना नहीं प्राप्त होवे है॥

सारांश = इस श्लोक में सर्व दुर्लभ पदार्थों का अबाधेमम होने से मुक्ति के लाभ में उद्यम करना आवश्यक है और मायामय तुच्छ पदार्थ जो प्रारब्ध वश से बिना प्रयत्न ही प्राप्त होते हैं उनमें उद्यम करना निष्फल है।

श्लोक. दुर्लभं त्रय मैवेत दैवानुग्रह हेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महा पुरुष संश्रयः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ= ये तीनही दुर्लभ हैं. ईश्वर की कृपासे मिलते हैं।
(१) मनुष्य देह (२) मोक्षकी इच्छा (३) ब्रह्मनिष्ठ विद्वान का सत्संग।
सारांश= मनुष्यजन्म मोक्षकी इच्छा और ब्रह्मज्ञानी का सत्संग ऐसी पूर्ण सामग्री मिलनेपर मोक्षके उपायमें तत्पर होना उचित है॥

लब्ध्वा कथञ्चिन्नरजन्म दुर्लभं तथापि पुंस्त्वं श्रुतिपारदर्शनम्
यस्त्वात्ममुक्तौ न यतेत मूढधीः सह्यात्महास्त्वं विनिहन्त्यसद्
ग्रहात्॥
अर्थ= जो विवेक रहित प्रमादी पुरुष दुर्लभ मनुष्यजन्मको किसी पुण्यसमूहसे प्राप्त होके तिसमें भी पुरुषशरीर वेदशास्त्रके पठन पाठनका अधिकारी हो. ब्रह्मस्वरूप मुक्तिके लिये यत्न नहीं करता. सो पुरुष आत्मघाती। मिथ्या वस्तुके ग्रहण करने से अपनेको नाश करता है. अर्थात अनेक नीच दुःखहेतु योनि की प्राप्ति के लिये उद्यम करता है।
श्लोक= इतः को न्वास्ति मूढात्मा, यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति॥
(दुर्लभं मानुषं देहं, प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥
अर्थ= जो पुरुष सबसे उत्तम दुर्लभ मनुष्यका शरीर तिसमें भी परम पुरुषार्थ स्वरूप मुक्तिके योग्य- देहको प्राप्त होके फेर मुक्तिकी प्राप्तिमें प्रमाद करता है। अर्थात पशुके तुल्य विषय भोगता है तिससे अधिक मूढ पुरुष कौन है। अर्थात- कोई नहीं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उद्धरेदात्मनात्मानं मग्नं संसारवारिधौ।

योगरूढत्वमासाद्य सम्यग्दर्शननिष्ठया॥

—•—

अर्थ = शंका = ईश्वर गुरु परम दयालु स्वभाव से संसार रूप समुद्र में गिरेजीवको मुक्त करदेवेंगे जीवको अपनायत्न निष्फल है॥

उत्तर = अपनेयत्न के विना दूसरा उद्धार करेवाला कोई नहीं है. क्योंकि अपनेयत्नसे मुक्तिहोने से सर्व मर्यादा का भंग होता है। इस वास्ते विषयोंसे इन्द्रियों सहित मनको हटाके अलमें एकताकरजो योग है उसमें प्रारूढ़ होके अद्वैतज्ञान निष्ठा करके संसार समुद्र में मग्न आत्माको आपही उद्धार करे

चित्तस्यशुद्धयेकर्म. नतुवस्तु पलब्धये॥

वस्तुसिद्धिर्विचारेण. नकिञ्चित कर्म कोटिभिः

अर्थ = कर्मों सेही आत्माका बोध प्राप्त होसकेहै विचार की कुछ आवश्यक्ता नहीं. इस शंका का उत्तर कहते हैं।

यज्ञादि कर्म चित्तकी शुद्धि के हेतु है. पुनः वस्तु ज्ञानके हेतु नहीं है विचार करके वस्तुका ज्ञान होवे है. क्रोड कर्म करने से लेशमात्र भी ज्ञान नहीं होवे है॥

अर्थस्य निश्चयो दृष्टो विचारेण हितोक्तितः॥

न स्नानेन न दानेन. प्राणायामशतेनवा॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आनंद है। आत्मा वा। प्रेम = आनंद।

अर्थ = अनर्थ दुःखका निवारक यथार्थ वक्ताके वाक्यके विचारसे रज्जु आदि पदार्थका निश्चय दीखता है। अर्थात् (जिसमें रज्जु में सर्पकी भ्रांति है) वह ज्ञान करके भी भ्रांति दूर नहीं होती न ज्ञान करने से होती है अथवा योगके अंग प्राणायाम आदि क्रिया करके भी नहीं होता।

किन्तु विचार से ही पदार्थका निश्चय जैसे लोकमें होता है वैसे ही ब्रह्मात्माके स्वरूपका भी गुरुके उपदेशके श्रवणानंतर मननरूप विचार से ही निश्चय होवे है॥

जो आत्मा परिछिन्न जानाति (कर्मणा बन्धेन न बध्यते। स्वरूप पूर्ण आत्मा पूर्ण जानाति (पुनर्जन्म न विद्यते॥ (योगवा।

(आस्ति भांति प्रिय सिंधु में, नामरूप जंजाल।
करै निर्लिप आत्म स्वरूप निज, है तत्काल निराल॥ तत्वमसि योगवा
(तत्पद मानो सिन्धु है, त्वंपद बिन्दु समान।
असि पद पानि दोउमें, ताली एक कर जान॥
(पढ़ना लिखना पूजना, गुड़िया केसा खेल।
भेंट भई सत पात्र से, दई ताक में मेल॥
(आत्म स्वरूप अज्ञानतें, मिथ्या भई प्रतीत।
जगत स्वप्न नभ नीलता, रज्जु भुजंग की रीति॥

अहं ब्रह्मास्मि (मैं ब्रह्म हूं) अयमात्मा ब्रह्म, (परमात्मा ही ब्रह्म है) तत्त्वमसि (वह ब्रह्म तू है) और प्रज्ञानं ब्रह्म (वह ब्रह्म ज्ञानस्वरूप है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पञ्चकोशाः के ? । अन्नमयः, प्राणमयः, मनोमयः,
विज्ञानमयः, आनन्दमयश्चेति ।।
शब्द का अर्थ है । आच्छादन करना ये पांचों आत्मा
को आच्छादन करने वाले हैं ।

अन्नमयः कः ? । अन्न के रस से ही जो उत्पन्न होता है ।
अन्न के रस में ही जो बढ़ता है और अन्नरूप
पृथ्वी में जो लीन हो जाता है उसे अन्नमयकोष
अर्थात स्थूल शरीर कहते हैं ।

प्राणमयकोशः कः ? पंच प्राण प्राण अपान व्यान समान उदान
रूप पांचो प्राण वायु समूह को और वाक पाणि
पाद, पायु और उपस्थ रूप पांचों कर्मेन्द्रियों
प्राणमय कोश कहते हैं । प्राणमय का
दूसरा नाम क्रियाशक्ति भी है क्योंकि प्राण-
मय कोश के सहारे ही शरीर की सब क्रियाएं
होती हैं ।

मनोमयकोशः कः ? । मन और श्रोत्र त्वक, जिव्हा और
प्राणरूप पांचो ज्ञानेन्द्रियों से मिल मेल
कोश होता है उसे मनोमय कोश कहते हैं ।
इसे इच्छाशक्ति भी कहते हैं । मनोमयकोश
की सहायता से ही आत्मा में इच्छा उत्पन्न
होती है । तात्पर्य यह है । कि मनरूप
ही संकल्प विकल्प वाला है । आत्मा में
इच्छा का होना मनोमयकोश से ही होता है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विज्ञानमय: कोश: क: ?

बुद्धि और त्वक् चक्षु जिह्वा और घ्राण रूप पांचो ज्ञानेन्द्रियों के मिलने से जो प्रकाश उत्पन्न होता है उसे विज्ञानमय कोश कहते हैं। इसका दूसरा नाम ज्ञान शक्ति भी है क्योंकि बुद्धि और पांचों ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से आत्मा को सब पदार्थों का ज्ञान होता है।

आनन्दमय: क: ? इस प्रकार कारण शरीर रूप अविद्या में रहने वाला रज और तम गुण के संयोग से प्रिय और मोद आदि वृत्तियों वाला जो कोश है उसे आनन्दमय कोश कहते हैं कारण प्रिय और इष्ट पदार्थ की प्राप्ति से मुदित और सुखित होता है।

यह त्रिविध देह (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) पंचकोशों में विभक्त है।

स्थूल देह अन्नमय कोश से बनी है।

सूक्ष्म देह प्राणमय मनोमय और विज्ञानमय इन तीन कोशों से विभक्त है।

कारण देह आनन्दमय कोश है।

सिद्धयोगोपदेश सप्त. १७ वें में देखो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजा जनक ऋषि की बातें सुनी ये लिङ्ग लोग शालमलीना वृक्ष पर बैठे थे और आत्म गीता कह रहे थे। उनका वर्णन नीचे बताया जाता है

प्रथम लिङ्ग | दृश्य द्रष्टा जो पुरुष है अरु दृश्य जो जगत है. तीन दृष्टा अरु दृश्य के विषे जो बुद्धि में निश्चित आनन्द होता है. सो दृष्टे के संयोग का अरु नष्टे के वियोग का जो आनन्द है सो चित्त विषे दृढ़ होता है॥ सो आनंद-आत्मा तत्त्व से उदय होता है स्पंद रूप जिस आत्मा आनन्द से सब उठता है। तिसकी हम उपासना करते हैं।

द्वितीय लिङ्ग | द्रष्टा दर्शन अरु दृश्य इनको वासना सहित त्यागकर जो दर्शन में प्रथम प्रकाश रूप है. जिसके प्रकाश करी यह तीनों प्रकाशित हैं. तिस आत्मा की हम उपासना करते हैं।

तृतीय लिङ्ग | जो निराभास निर्मल रूप है. अरु आभास अरु मनन के भाव का अभाव है जिस विषे द्वितीय कल्पना का अभाव है अद्वैत रूप है. तिसकी हम उपासना करते हैं।

चतुर्थ लिङ्ग | दोनों के जो मध्य विषे है अस्ति नास्ति दो के पदों से रहित प्रकाशात्मरूप सत्ता है. सब सूर्य आदिकों को भी प्रकाश करता है। तिस आत्मा की हम उपासना करते हैं।

पंचम लिङ्ग | जो ईश्वर सकार हकार भया है अर्थात् जो सकार जिसके आदि विषे और हकार है। जिसके अन्त विषे ए से सोहं है॥ सो अंत से रहित आनन्द अनन्त जो शिव परमात्मा है सो अनन्त आत्मा सर्वजीव के हृदे विषे स्थित है। निरन्ना जो अहं रूप लोकी उच्चारता है तिस आत्मा की हम उपासना करते हैं।

षष्ठम लिङ्ग | मिथ्या हृदे विषे स्थित जो ईश्वर है तिसको त्यागकर जो और ठौर देव के पावने की जतन करते हैं सो पुरुष हस्त विषे कौस्तुभमणी को त्यागकर और रत्नों की वांछा करता है

सप्तम लिङ्ग | जब सर्व आशाओं को त्यागता है तब इसको फल प्राप्त होता है. जो आशा रूपी विष की वल्ली है सो मूल संयुक्त नष्ट हो जाती है अर्थ-यह जन्म अरु मरन आदिक दुःख नष्ट होते हैं वासना भी उपजते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सारांश- जो पदार्थों को अत्यंत विरस रूप जानता है अरु बुद्धी उस विषै आशा बांधते हैं। सो दुर्बुद्धि गंदि है मनुष्य नहीं. जहां जहां विषयों की ओर दृष्टि उठती है. तिन सबै विवेकबुद्धी नष्ट करदे। जैसे इन्द्र ने वज्रसाथ पर्वतों को नष्ट कियाथा. तैसे नष्ट करदे॥ जबै इसका शुद्ध आचरण किया॥ तब सम भावों को प्राप्त होवेगा. अक्षय अविनाशी पद को पावेगा॥ इति।

(मानसिक-शांति)

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः।

मन प्राणियों के हृदय में निवास करने वाली एक ऐसी चंचल शक्ति है जो प्राणियों को अपनी शृंखलता में बांधकर उन्हें मनमाने मार्ग पर ले जाती है. इस शक्ति का दमन करना सरल काम नहीं है. श्रीकृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा है

हेतोः- चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सु दुष्करम्॥ गीता ६।३४

अर्थात- हे भगवन यह मन अत्यन्त चंचल एवं हृदय में उद्वेग करने वाला दृढ़ और बलवान है इसको दमन करना वायु के वेग को रोकने के समान अत्यन्त कठिन है. इसे किस प्रकार वश में करूं श्रीकृष्ण भगवान ने अभ्यास वैराग्य से वश में करने को कहा है. इसको रोकने का अभ्यास से. जैसे नेत्र का काम रूप में आदि इन्द्रियों के विषय से रोकने से वैराग्य द्वारा मन वश में होता है. सब इन्द्रियों के विषय से रोकने से यह शरीर बचा है. इन्द्रियमन प्राण आदि की व्याख्या की है-

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेवतु। बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेवच॥ इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्। आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः

अर्थात शरीर रथ है आत्मा रथी है. बुद्धि सारथी है। मन लगाम है. इन्द्रियां घोड़े हैं। यह रथ संसार मार्ग पर- विषय भोग के मार्ग पर जाता है. जिस प्रकार रथ के घोड़े वश में न होने पर रथ को उल्टे रास्ते मार्ग पर ले जाकर पटक देते हैं. ठीक उसी प्रकार यदि इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को वश में न किया जायगा. तो ये न जाने इस आत्मा रथी रूपी को अपने इच्छा जुला फेल यतन दे गर्त में डाल देंगे. अतः यह अवश्यक है. मनुष्य मनरूपी लगाम को लेकर इन्द्रियरूपी अश्वों को विवेक के द्वारा वश में करे. और उन्हें धर्ममार्ग पर चलाते हुए लक्ष्य को॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधन-चतुष्टय

साधन-चतुष्टय किम = साधन-चतुष्टय किसे कहते हैं :

नित्यानित्यवस्तु विवेकः, इहामुत्रार्थ फलभोग विरागः
शमदमादिषट्क सम्पत्तिः, मुमुक्षुत्वं चेति ॥ =

(१) ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्येत्येवंरूपो विनिश्चयः ।
सोऽयं नित्यानित्यवस्तु विवेकः समुदाहृतः ॥१॥

अर्थः साधन-चतुष्टय = विवेक

(१) ब्रह्म सत्य है संसार मिथ्या है यह जो निश्चय है वही नित्यानित्य विवेक कहा गया है ।

(२) वैराग्य = तद्वैराग्यं जिहासा या दर्शन श्रवणादिभिः ।
देहादि ब्रह्म पर्यन्ते ह्यनित्ये भोग वस्तुनि ॥२॥

अर्थ = दर्शन श्रवण आदिके द्वारा देहसे लेकर ब्रह्मलोक-पर्यन्त जो अनित्य भोग पदार्थ हैं उनके त्यागने की इच्छा है वही वैराग्य है ॥

श्लोकः - नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः ॥

अर्थः इस आत्माका छेदन शस्त्र नहीं करते हैं इसे अग्नि नहीं जलाती है ।
और इसको जल भी नहीं गलाता है वायु भी नहीं शोषण करता है ।

श्लोकः - नजायते म्रियते वा कदाचिन्नायंभूत्वाभविताव न भूयः ।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

श्रीमद्भागवतगीता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ - यह आत्मा जन्म नहीं लेता है. न कभी मरता है। यह आत्मा एक बार होकर फिर नहीं होगा यह नहीं अर्थात इसका अस्तित्व भूतकालमें भी था- भविष्यकालमें भी रहेगा. यह जन्म रहित है. सब कालमें रहने वाला है। एक रूपमें यह सबसे प्राचीन है. शरीरके मरनेपर भी यह नहीं मरता है।

अहंकार से सावधान - (कल्याण)

याद रखो - मनके मलों में सबसे बढ़कर - गहरा चिपटा हुआ मल है अहंकार। यह सहज ही दूर नहीं होता इसके नाशके लिये त्यागका जी तोड़ जतन - करना पड़ता है। परंतु जबतक अहंकार रहता है तबतक साधना सिद्ध नहीं हो सकती। अहंकार की जरासी हुंकार सही कि सारा चौपट हो जाता है। अहंकार का नाश होता है अपने गौरव - बड़प्पन का त्याग करने से। बात भी यही है। मनुष्य के पास अपने बड़प्पन की वस्तु क्या नहीं है। यदि कुछ गौरव है. तो वह भी भगवान की ही है। जो मनुष्य मोहवश भगवान के गौरव को छीनकर अपने में आरोप - करने की चेष्टा करता है वह अहंकार के वश में होजाता है और उसके अहंकार का अंकुर पैदा हुआ कि सारे पुण्य नष्ट होजाते हैं -

अहंकारांकुरस्याग्रे - तदा पुण्यं न तिष्ठति।

कल्याण चैत्र १९९८ प्रेषक १९४२ गोरखपुर गीताप्रेस

(परमार्थ-पत्रावली) श्रीजयदयालजी गोयन्दका के पत्र

लेख है साधना के विषयमें. मिट्टी स्वर्ण में समान, राग द्वेष रहित मान- अपमान, निंदा स्तुति में समान हो. संसार से जीवन मुक्ति की तरह साधन करना चाहिये. उत्तम गुण स्वभाव होने चाहिये। सद्गुणों की प्राप्ति के लिये भजन ध्यान सत्संग आदि साधन निष्काम प्रेमभाव से करना चाहिये। साधन के विषयमें बहुत सी बातें लिखी है। वह साधन गुप्त है। या - भजन करने का नाम लिखा है। आदि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ खोलदे पलक ॥ श्री स्वामी ओंकारानंदजी

खोलदे पलक देखले झलक, कहाँ है खलक ! न काया है न माया है।
न धूप है न छाया है. आप में आप समाया है ॥ न गाम है न नाम है।
न हड्डी है न चाम है. तू पूर्ण काम. आप्तकाम है। न रूप है न कुरूप है.
रूप तेरा अनूप है. बुद्ध बुद्ध मुक्त स्वरूप है न रोगी है न रोग है।
न योग है न भोग है. न मुफ्त में लपेट है न लाग है न डेव है न दाग है.
न क्रोध है न लोभ है। तू निष्कलंक है. निर्दोष है। न पास है. न दूर है।
विश्व में भरपूर है. हाजिर हुजूर है। न दुबली है न हृष्ट है. न मोटा है:
न मरीन है: दृष्ट पुष्ट सदा यौवन नित्य नवीन है। न दीर्घ है न कंगाल है
वर्णधर्ममालामाल है. हलाहलकालाल है। बाहर है - अन्दर है सब से
आधक सुन्दर है। निर्गुण एक रस गुणमन्दिर है। साक्षी भी नहीं है।
सर्वाधार निराधार है. दृष्टी धारे दृष्टी धारे. तूने आय अपने की ली
आड़ है। तभी मोक्षेच्छा भाड़ है। बीज का रोग या झाड़ है. जब से
तूने चाहा नाम. तभी से बिगड़ गया सब काम, खोदी सारी प्रतिष्ठा.
होगया बदनाम। इसलिये तुझे सर्प काम. भूल गया अपना नाम. फिरे
लगा ग्राम गाम। क्रोधाग्नि से उबलने लगा. भीतर ही भीतर घुलने लगा.
चिन्ता चिता में जलने लगा। लोभ ने कर दी आँखें बन्द सूझता भी
होगया प्रबन्ध. करने लगा अंधा धुंध ! काया से तूने कर लिया - ले संग
तभी हो रहा तंग, नहीं तो तू है अभंग ! छोड़ दे उसका संग संग सोऽहं अभंग
दुखका कर दे भंग ! मत हो तू जड़. तू है अजड, दे दे अहं
तू है सत चित दुखरूप. तू है सुख स्वरूप फिर तेरा और हेर का
मेल ही कैसे हो सकता है ? - कहीं रात दिन का मेल होता है। कहीं रज्जु
भी सर्प हुई है सच को झूठ जानता है सच को झूठ को सच मानता है।
उल्टी जानता है जब कष्ट पाता है: रोता चिल्लाता है, काल को
कर्म को ईश्वर को दोष लगाता है। ऐनक पर ऐनक लगाली है. आंखें
ढक गयी है फिर दीखे कैसे ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपनेको पराया जानता है. पराये को अपना मानती है. देशको भूल जाता है. परदेश को देश समझ कर बैठा है. परदेश में कहीं सुख मिलता है. सुख तो देश में होता है. बाहर भटक रहा है. घर की खबर नहीं है. अरे! तेरे घर में अमृत रस भरा हुआ है. फिर भी तू कौड़ी कौड़ी को मोहताज हो रहा है. छोड़ पाती होकर दो कौड़ी का आदमी बन गया है. पुण्यवश तुझे मानव का घर मिल गया है. उसके घर को बरबाद क्यों कर रहा है. आंखें खोल के बाहर मत देख भीतर देख, जगत में तेरी ही रोशनी है. तेरी ही रोशनी में सब काम हो रहा है. तेरी चमक से सूर्य चमकता है. तेरी दमक से चन्द्र दमक रहा है. तू ही पृथ्वी में प्रवेश करके चराचर का पालन पोषण कर रहा है. तू ही अग्नि होकर वह भीतर के अन्न को पकाता है. तू ही गंगा यमुना होकर बह रहा है. समुद्र में तेरी ही गम्भीरता है. पवन में तेरी ही गति है. आकाश में तेरे ही स्वरूप को अवकाश देखता है. जैसे तुझमें ब्रह्माण्ड कल्पित है उसी प्रकार — कल्पित देह है. इसमें नहीं कुछ भी कर रहे. जब तू कान के साथ मिल जाता है तब तेरे को भयानक और यथार्थ शब्द सुनने लग जाता है. जब तू त्वचा के साथ मेल कर लेता है. तब छूने अथवा लगने लग जाता है. जब तू आंख के संग करता है जब चकाचौंध में पड़ जाता है. जब तू जीभ के साथ अभ्यास करता है. तब तेरी लार टपकने लगती है. और जब तू नासिका के साथ सम्बंध करता है तब तू नाक सिकोड़ने अथवा फुलाने लग जाता है. जब तू वाणी में प्रवेश करता है तब खोटी खरी कहने लग जाता है. जब तू हाथ पर बैठ जाता है तब लेने देने लग जाता है. जब पैरों के साथ एक मेक हो जाता है तब कोस नापने लग जाता है. जब तू उपस्थ में स्थित होता है. तब आनंद मानता है. जब तू पायु के साथ मिलने का भ्रम करता है तब मैल का त्याग करना सिखाता है. जब तू मन में घुस जाता है. तो चौदह लोकों की खबर लाता है. तब शोक संकल्प विकल्प लज्जा भय संशय ईर्ष्या राग द्वेष करने लग जाता है. बुद्धि में घुसकर विज्ञाता. चित्त में बैठ कर स्मरण करता है. और अहंकार के साथ मिल कर तेरा मैं मैं चिल्लाता है. प्राणों के साथ मेल कर लेने से भूख प्यास प्रतीत होती है. अनुकूल पदार्थ मिलने से सुख है और प्रतिकूल मिलने से दुःखी होता है. वस्तुतः तू आत्मा है अनुकूल है. तेरे लिये सभी अनात्म पदार्थ प्रतिकूल हैं. तेरी अनुकूलता में प्रतिकूलता भी. कभी कभी अनुकूल भासते हैं. —३०१—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं तो स्वरूपसे तेरे सब प्रतीकूल होनेसे दुःखरूपतासे इसलिये तू
विशेष करके दृष्टी ज्ञातासे देख। दृश्य नहीं होसकता।
भोक्ता भोग्य नहीं होसकता। प्रमाता प्रमेय नहीं होसकता।
तुझ असंग आत्मामें द्रष्टापन, भोक्तापन और प्रमातापनभी
संभव नहीं है। भ्रमसे तुझमें द्रष्टापन आदिका अनुभव होताहै।
भ्रम अनर्थका कारण है। भ्रम तेरी तू नाना प्रकारके कष्ट पारहाहै
दृश्य, भोग्य, और प्रमेय विषयोंका संग छोड़दे। फिर तू न द्रष्टा
न भोक्ता है और न प्रमाता है, किन्तु अखण्ड सुखस्वरूप आत्मा है
मैं तेरी हितकारिणी हूं सब कार्यों की साक्षी रहती हूं। सुख और दुःखके
साधन बताना मेरा काम है। सावित्री रूपसे मैं इस लोकके भोगोंकी प्राप्ति कराती हूं
गायत्री रूपसे ऊंचे लोकोंकी प्राप्ति कराती हूं। दिव्य भोग प्राप्त कराती हूं। और सरस्वती
बनकर स्वरूपके बोधमें निष्ठा पदकी प्राप्ति कराती हूं। यद्यपि मैं निर्गुण स्वरूपा
हूं तथापि तेरे लिये पुकारती फिरती हूं। फिर भी जीव मेरी का कोई महान पुण्य उदय होता
जिसका भाग्य जागनेवाला होता है वह मेरी वाणी सुनसकता है। अरे बहू बड़ा भारी
पुण्य उदय हुआ है। इसलिये तेरे को सत्यभामानी अरुन्धती
जगाया करती थी उसीप्रकार मैं तुझे जगा रही हूं जाग जा! तीनों शरीर ज्ञेय वाले हैं; दृश्यों से
रहित केवल आनंद स्वरूप है। तीनों शरीर मिथ्या हैं; तीनों कालमें एकसे नहीं रहते।
सत्यस्वरूप है तीनों शरीरसे न्यारा और परोक्ष है। अर्थात् तू चेतन स्वरूप आपही है तीनों
तापोंसे तीनों शरीरोंका किसी प्रकार भी सम्बंध नहीं होसकता तू अपने को नहीं जानता
इसीसे तुझे सम्बंध भासताहै। मेरा कहना मानजा, अपनेको जानजा, जागजा आनंद
खोलदे जागजा। मोह निद्रा त्याग दे, बच्चा जागजा, सुखी जागजा, दयालु जागजा!
श्रुति भगवती विशोक, मोह-नाशक अमृत रसभरी वाणी सुनकर मुमुक्षुने खोलदिये
बल के देखनेवाली अद्भुत कमल! अर्थात् मायाका कलंकमय खलक होगया देखके
वे कलंक शरीरसहित भी अशरीरलोक सुखले देनेवाले लगा।
बोलो- तारिणी भव-भय-हारिणी, कल्याण कारिणी जग-
जननी श्रुति मोक्षेश्वरी श्रीजय!

ॐ शांति! शांति!! शांति!!!

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

१०२

१) कर्तव्य कर्म है - सोऽहं समाधौ आत्मनि आचरेत । श्रुति
न निर्मितरूप समाधिमें जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य
का सान्निध्य का अभ्यास करे । आमृत्योः मृते: कालं नयेद्वेदान्तचिन्तनेन
अर्थात्
अन्तं सन्यास आश्रम में प्रवेश करके अधिकारीजिज्ञासु मुमुक्षु सुषुप्ति
अवस्थाओं में वेदान्त शास्त्रका चिन्तन करते
मृत्यु पर्यन्त समय व्यतीत करे ।

श्लोक १ संन्यस्य श्रवणं कुर्यात् नान्यत् कुर्याद् यतिः क्वचित् । सदा
अर्थ - सन्यास लेकेवेदान्त शास्त्रकी यतिको करना चाहिये
इसके अतिरिक्त सन्यासीके लिये अन्य कोई कर्तव्य नहीं ।

श्लोक २ वेदान्त श्रवणं कुर्यान्मननं चोपपत्तिभिः ।
योगेनाभ्यसनं नित्यं ततो दर्शनमात्मनः ॥ सदाचार (१८)
(यति सन्यासीको प्रतिदिन वेदान्त श्रवण करना चाहिये तथा युक्तिद्वारा
उसे दृढ़ मनन करना चाहिये एवं नित्य योगका अभ्यास करना
चाहिये तभी आत्माका दर्शन होगा ।

श्लोक ३ एकान्ते सुख मास्यतां परतरे चेतः समाधीयताम् ।
पूर्णात्मा सुसमीक्ष्यतां जगदिदं तद्बाधितं दृश्यताम् ॥
(यति) सन्यासीको एकान्तमें सुख पूर्वक बैठना चाहिये परतत्व में चित्तको साधन पंचक ५
समाहित करना चाहिये पूर्ण आत्मस्वरूप को सम्यक रूपसे समीक्षा
करनी चाहिये तथा यह जगत आत्मस्वरूप द्वारा बाधित है यह
देखना चाहिये ।

संन्यासीको शमदमादिसे युक्त तथा अहंब्रह्मास्मि मैं ब्रह्म हूं इस महावाक्य
का विचार करना चाहिये तथा जबतक इस महावाक्यके लक्ष्यार्थका
दृढ़ बोधन हो तबतक श्रवण मनन और निदिध्यासनका अभ्यास
करते रहना चाहिये ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ब्रह्मज्ञानियों के स्वभाविक गुण

मान का परित्याग, दम्भ का परित्याग, हिंसा का परित्याग, क्षमा, विनम्रता, आचार्य की उपासना, शरीर और मन की पवित्रता, स्थिरता, मन का संयम, विषयों से इन्द्रियों का वैराग्य, अहंकार का अभाव, और जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, व्याधि स्वरूप दुःखरूपी दोषों का अनुस्मरण, पुत्र स्त्री गृह आदि में आसक्ति और ममत्व न रखना, अभिलषित वस्तु की प्राप्ति या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति, दोनों में सदा समान चित्त रखना इत्यादि।

श्लोक :- प्रकाशञ्च प्रवृत्तिञ्च मोह मेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांक्षति॥

हे अर्जुन सत्त्व-रज-तम इनके कार्य भूत ज्ञान प्रवृत्ति मोह के उपस्थित होने पर जो द्वेष नहीं करते और उनके उपस्थित नहीं होने से उनकी आकांक्षा भी नहीं करते

श्लोक/उदासीन वदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव यो वतिष्ठति नेङ्गते॥

उदासीन की तरह बैठा हुआ, सत-रज-तम इन गुणों से जो विचलित नहीं होता है, उन गुण तो रहो तिरें यह समझ कर जो स्थिर रहते हैं अर्थात् गुणों से जो नहीं हिलते हैं

श्लोक: सम दुःख सुखः स्वस्थः समलोष्टाश्म कांचनः
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्म संस्तुतिः॥

(दुःख-सुख दोनों में जो समान रहते हैं, जो आत्म स्वरूप में अवस्थित रहते हैं, जिन्हें ढेला पत्थर और सोना सब समान है, जिन्हें प्रिय और अप्रिय दोनों तुल्य हैं, जिन्हें निन्दा और अपनी स्तुति दोनों तुल्य है और जो धीर हैं, जो चाह से रहित हैं - कहा भी है

चाह चमारी चूहरी, चाह नीच की नीच,
तू तो पूरण ब्रह्म है, जो चाह न

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सत्संग की महिमा.

कल्याण अंक पृष्ठ १८४ आखिरी पृष्ठपर

जो लोग वर्ण एवं आश्रमोचित सदाचारका पालन करते हैं, जिनका अन्तःकरण काम आदि दोषोंसे रहित है और जो स्वयं अपने हृदय में भगवत्प्रेमी सन्तोंका चिन्तन करते रहते हैं। वे ही सन्त साधकोंको दीक्षा देनेके अधिकारी हैं। वैसे सन्तोंका संग ही सर्वश्रेष्ठ लाभ है। जिनके अन्तःकरण और इन्द्रियां अपने वशमें नहीं हैं, उनके लिये तो वह दुर्लभ ही है। यदि किसी प्रकार सत्संग मिल जाय तो पुण्यजन्म के पुण्योंका उदय समझना चाहिये। जब जन्मजन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं, तभी सत्संग की प्राप्ति होती है। ~~अन्यथा~~ अन्यथा नहीं। सूर्य तो केवल दिन के समय अपनी किरणों से बाहर का अंधेरा नष्ट करते हैं। परन्तु सन्त अपने सदुपदेश रूपी किरणों के द्वारा निरन्तर ही भीतर का अन्धकार मिटाते रहते हैं। अवश्य ही जगत में ऐसे संत पुरुष दुर्लभ हैं, जिनके हृदय में भगवत्प्रेम का समुद्र लहराता रहता है। परन्तु यदि कहीं ऐसे पुरुषों का संग प्राप्त हो जाय तो सदा के लिये अनन्त शांति मिल जाती है॥ (बृहन्नारदीय पुराण ४।७४।८)

नोट - उपरोक्त लक्षणों अनुसार लक्षणताई गुरु शास्त्री शान्ती होनेपर उपरोक्त बातें प्राप्त होजाती हैं। जैसे कहा भी है

पारसमें अरु सन्तमें बड़ो आंतरो जान। वह लोहा कंचन करे, यह करे आप समान॥
गुरु जो ऐसा चाहिये जो शिष्य लीजिये होय। जन्म जन्मका मोरचा पलमें डारे धोय॥
जो सुखको मुनिवर रटे, करणा करें विलाप। वह सुख पलमें देत है साधो संगति आप॥
जगत मोह फांसी अजर कटे न आन उपाय। जो नित सत्संग करत सहज मुक्त हो जाय॥

श्लोक - गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्प तरुर्हरेत। श्री मद्भागवत
पापं तापं तथा दैन्यं सर्व साधु समागमः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ ईश्वर की माया ॥

शास्त्रों में माया की अनेक प्रकार से व्याख्याएं मिलती हैं।

(१) जो वस्तु भूत, भविष्यत और वर्तमान तीनों ही काल में है ही नहीं उसको है ऐसा मानना इसी का नाम माया है।

(२) जीव के आत्म स्वरूप को जो अपने आवरण से आच्छादित कर ली है वह माया है।

(३) जो वस्तु यथार्थ ज्ञान होने के उपरान्त समूल निवृत्त हो जाती है। उसका नाम माया है।

(४) कार्य-कारण (जगत कार्य और परमात्मा उसका कारण है) के भेदका कारण है अर्थात कार्य कारण के भेदको उत्पन्न करने वाली जो वस्तु है वही माया है।

(५) माया वास्तव में कुछ नहीं है, परन्तु वेद में आत्मा को जगत का कारण तथा सर्व जगत रूप कहा है। इससे जगत का कारण सिद्ध होने के लिये ये अर्थात जगत के उत्पन्न होने में परमात्मा आदि को ही कारण मूल है ऐसा निश्चय होने के लिये माया की केवल कल्पना मात्र की गई है।

(६) अपने अधिष्ठान में जो आत्मा है उसके साक्षात्कार द्वारा जब अज्ञान की निवृत्ति होती है तब सर्वत्र परब्रह्म ही-परब्रह्म भासमान होता है वह जो अज्ञान है उसी का दूसरा नाम माया है।

(७) परमात्मा भगवान की उस आदिशक्ति महामाया का नाम माया है जो भगवान की सत्ता पाकर समस्त जगत विलास को रचती है। माया है इस माया का आवरण कैसे दूर हो भगवत्कृपा से उसके भजन से अतः—

जीव देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते माया मेतां-तरन्ति ते॥ गीता

हरिमाया कृत दोष गुन। बिनु हरि भजन न जाहीं।
भजहु राम सब काम तज। अस विचार मन माहीं॥ तुलसीकृत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शीतलवन्त सबतें बड़ो, सब रत्नों की खान। शांत कौन है
तीनलोक की सम्पदा मिली शीतल में आन॥
॥ शान्त कौन है॥ १५

जिसने साधना के द्वारा अपनी इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करली है। जो समस्त प्राणियों और वस्तुओं के प्रति समदृष्टि रखता है। भविष्य के लिये प्रारब्धजन्य प्राप्त होनेवाले सुख दुःखों को न चाहता है और न छोड़ता है उसे शांत कहते हैं।

जिसकी दृष्टि समस्त प्राणियों के प्रति प्रेमपूर्ण और अमृत धारा के समान सुखद होती है उसे शांत कहते हैं।

जिसका अनन्तकाल सर्वदा के लिये शीतल हो चुका है जो भावनाओं में डूबने नहीं लगता व्यवहार करते हुए भी उसमें प्रसक्त नहीं होता उसे शांत कहते हैं।

चिरकाल तक रहनेवाली आपत्तियों में और महाप्रलय उपस्थित होने पर भी जिसके मनमें घबराहट नहीं होती। त्रिविध शरीर के प्रति अहंता ममता नहीं होती उसे शांत कहते हैं।

जिसकी मनोवृत्तियां व्यवहार करते समय भी राग द्वेष आदि दोषों से दूषित नहीं होतीं, आकाश के समान निर्लेप और स्थिर रहती है। उसे शांत कहते हैं।

योगवासिष्ठ मुमुक्षु व्यवहार प्रकरण

॥ ज्ञान की सात भूमिकाओं में "जिसमें शुभेच्छा प्रथम है" वे ये हैं अध्याय १३ श्लोक ५

(१) शुभेच्छा (२) विचारणा (३) तनुमानसा (४) असंसक्ति (५) पदार्थाभावनी
(६) तुर्यगा (७) सत्त्वापत्ति

ये सात ज्ञान भूमि योगवासिष्ठ में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्च कामसुखं लोके . यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते . नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ व्यास .
न सुखं देवराजस्य . न सुखं चक्रवर्तिनः । 32 सप्त
यादृशं वीतरागस्य . मुनेरेकान्त शीलिनः ॥ व्यास

श्लोक = क्षमा तीर्थं तपस्तीर्थं. ~~तीर्थं~~ तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया तीर्थं, ध्यान तीर्थं मनुत्तमम् ॥ ~~वृहस्पति~~
एतानि पंच तीर्थानि सत्य षष्ठानि सर्वदा ।
देहे तिष्ठन्ति सर्वत्र एषु स्नानं समाचरेत् । वृहस्पति

~~स्नान~~ अथ
आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्थो सत्योदका शील तटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र . न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ॥

श्लोक : न तथा पुष्करे स्नात्वा . गयायां कुरु जाङ्गले ।
मुच्यते पुरुषः पापाद्यथा ~~स्नात~~ स्नातः क्षमा ह्रदे ॥ पापाद्यथा

श्लोक : सर्व यज्ञेषु यद्दानं. सर्व तीर्थेषु यत्फलम् ।
सर्व दान फलं वापि. तन्न तुल्य मितिंसया ॥

श्लोक सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात्सत्यम प्रियम् ।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥

रागान्धोहिजनः सर्वो न पश्यति हितोहितम् ।
रागं तस्मान्न कुर्वीत. यदीच्छेदात्मनो हितम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असत्यमपि वक्तव्यं गो ब्राह्मण हितायच ॥
सत्यादपि हि तत्सत्यं न सत्यं सत्य मुच्यते ॥

क्षमा तीर्थं तपस्तीर्थं, तीर्थमिन्द्रिय निग्रहः ।
सर्व भूत दया तीर्थं, ध्यान तीर्थं मनुत्तमम् ॥

एतानि पंच तीर्थानि - सत्यषष्ठानि सर्वदा ।
देहे तिष्ठन्ति सर्वस्य, एषु स्नानं समाचरेत ॥

न तथा पुष्करे स्नात्वा, गया यां कुरुजाङ्गले ।
मुच्यते पुरुषः पापाद्यथा स्नातः क्षमादिषु ॥

निगृहीतेन्द्रिय ग्रामो, यत्र यत्र वसेन्नरः ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं, निमिषं पुष्कराणिच ॥

इदं तीर्थमिदं नेति, ये नरा भेद दर्शिनः ।
तेषां विधीयते तीर्थं गमनं तत्फलानिच ॥

सर्वं ब्रह्मेति यो वेत्ति, न तीर्थं तस्य किंचन ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु, ब्रह्मण्येव स वर्तते ॥

स्नानं मनोमलत्यागो, दानं चाभय दक्षिणा ।
ज्ञानं तत्त्वार्थ संबोधो, ध्यानं निर्विषयं मनः ॥

मनसश्चेन्द्रियाणांच, ऐकाग्र्यं परमं तपः ।
तज्ज्यायः सर्व धर्मेभ्यः सधर्मः पर उच्यते ॥

ध्यानं.

सर्वज्ञोऽहं, मनन्तोऽहं - सर्वेशः, सर्वशक्तिमान् ।
आनन्दः सत्यबोधोऽहं, मिति ब्रह्मानु चिन्तनम् ॥

मैं सर्वज्ञ हूँ । मैं अनन्त हूँ । मैं सर्वेश और सर्वशक्तिमान हूँ । मैं आनन्द हूँ मैं सत्य हूँ मैं ज्ञान हूँ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यान

अज अमर अमृत अभय पूर्णतम पुरुषोत्तम सर्वेश्वर सर्वशक्तिमान अखण्ड अनन्त सत्घन चित्घन प्रत्यक् दर्शी, प्रत्यक् चैतन्याभिन्न कन्दर्प दर्प दलन पटियान सौन्दर्य सुधासिन्धु पूर्णानुराग रस सार सागर श्री व्रजेन्द्र नन्द नन्दन श्री कृष्णचन्द्र आनन्दकन्द परम तत्व।

धर्म किसको कहते हैं

~~धर्म कि इति~~

यतो अभ्युदय निश्रेयस स सिद्धिः स धर्मः॥ वैशेषिक शास्त्र 1ला अध्याय - 1

दोला: मल विक्षेप आवर्ण यह, लगो ~~या~~ धी तीन।
देखि परे किमि आतमा, अन्तः करण मलीन॥

दोहा: मल कहते हैं पाप को - सो स्वधर्म ते जाय।
चंचलता विक्षेप चित, थिर उपासना पाय
आवर्ण कहत अज्ञान को, ज्ञानभये ते नाश।
तब मुमुक्षु ज्ञानी भया - तोड़ि अविद्या पाश॥

अर्थ: मल पाप को कहते हैं सो स्वधर्म अर्थात अपने वर्णाश्रमानुसार कर्तव्यकर्म से नष्ट होजाते। चित की चंचलता को विक्षेप कहते हैं वह - उपासना (शिव, विष्णु इत्यादि देवमेंसे किसी एक सगुन स्वरूप के ध्यान से शांत होती है। आवर्ण अज्ञानता को कहते हैं जब ज्ञान होनेसे उसका नाश होता है तब मुमुक्षु पुरुष अविद्या माया का बन्धन तोड़के ज्ञानी होजाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ब्रह्म ज्ञानियों के लिये पूजा) श्रीशंकर स्मृति ६३४

दोहा श्लोक ॥

एकमेव परं पूजास्वावस्थासु सर्वदा ।
एकं बुद्ध्या तु देवेशे विधेया ब्रह्मवित्तमैः ॥

अर्थ - ब्रह्म वेत्ताओं को (भेद भाव रहित) बुद्धि से देवेश-परमात्मा की इस प्रकार परा पूजा सदा सब अवस्थाओं में हमेशा करनी चाहिये

श्लोक = (आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम् ।
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रासमाधिस्थितिः ।
संचारस्तु पदाः प्रदक्षिण विधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
(गृहस्थ पूजा) यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ।

इस प्रकार निराकार परमात्मा की स्थूल पूजा नहीं होती है, तथापि साकार-मूर्ति की साकार पूजा सफल होती है। प्रेमी-भक्तों की भावना से निराकार ही साकार रूप में प्रगट होता है। यद्यपि साकार रूप में स्थित नहीं है तथापि वह - निराकार की प्राप्ति में अवलम्बन साधन हो सकता है. इससे लाभ यही है कि वह दिव्य चिन्मय साकार पूजा की भावना से प्रभुमय होजाता है. इसलिये साकार पूजा का विधान सफल है।

यद्यपि पूर्ण परमात्मा हीनतीन अज्ञानी मनुष्यों से अपने लिये मान-प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं करता। तथापि प्रभु भक्त परमात्मा के उद्देश्य से जो जो दुःख पूजा मान प्रतिष्ठा करता है उसके फल का भागी आपही स्वयं बनता है। जैसे बिम्ब को समर्पण किया हुआ पदार्थ प्रतिबिम्ब को अनायास ही प्राप्त होता है। तद्वत ईश्वर बिम्ब है और जीव उसका प्रतिबिम्ब है। इसलिये ईश्वर पूजा का फल जीव कोटी - अनन्त गुणा होकर मिल जाता है। - श्रीशंकर स्मृति सुधा. दुः

। शिव कृपा बिना नसिद्धि . शिव कृपा बिना न बुद्धि ।
। शिव कृपा बिना न भुक्ति . शिव कृपा बिना न मुक्ति ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक- वर्णाश्रमाभिमानेन. श्रुतिदासो भवेन्नरः ।
वर्णत्रयी विहिनश्च. धारतो श्रुति मूर्धनि ।।
दिग्देश कालाद्यनपेक्षि. सर्वग-शीतादि द्वन्द्वनित्य सुखं निरंजनम् ।
यः स्वात्म तीर्थं भजते विनिष्कियः स सर्व नित्सर्व गतो मृतो ह्यतः ।।
अर्थ आत्मज्ञानी पुरुष एकाग्रचित्त होकर पूर्व आदि दिशा और कुरु आदि देश और भूत भविष्यत वर्तमान काल इनकी अपेक्षा से रहित सर्वव्यापक और शीत उष्ण इन दोनों के नाश करने वाले नित्य सुख स्वरूप और निरंजन अर्थात् मायादि के कार्य मलरूप मल से रहित ऐसे आत्म तीर्थ का स्वरूप की दृष्टियों को छोड़ कर सेवन करता है वही सर्वव्यापक और मृत अर्थात् मुक्त पुरुष कहलाता है ।
तीर्थ लेना - कहा भी है -
आत्मा नदी संयम पुण्य तीर्थो. सत्योदका शील तटा दयोर्मिः ।
तत्राभिषेकं कुरु पाण्डु पुत्र. न वारिणा शुद्ध्यति चान्तरात्मा ।।
अर्थ हे पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर ! इंद्रियों को रोकना जिसका पुण्य तीर्थ है सत्य जिसका जल है शील जिसका तट है और दया ही जिसमें तरंगों की माला है ऐसी आत्म रूपी नदी में स्नान करो क्योंकि केवल जल से ही भीतर की आत्मा शुद्ध नहीं होती है ।
श्लोक - सम्पूर्ण जगदेव नन्दनवनं सर्वौषधि कल्प द्रुमाः ।
गाङ्गं वारि समस्त वस्तु निवहाः पुण्याः समस्ताः क्रियाः ।।
वाच्यः प्राकृत संस्कृताः श्रुति शिरो वादाश्च सर्वे मुनिः ।
यस्मिन्नमावेत सागरे खिलतं तोये परे ब्रह्मणि ।।१।।
अर्थ- जो ज्ञानी पुरुष सच्चिदानन्द घनब्रह्म रूपी सागर में निरन्तर लीन रहता है उसे लिये सम्पूर्ण जगत नन्दनवन के तुल्य है और सब औषधि कल्पवृक्ष के समान हैं गंगा आदि के जल समस्त वस्तु के तुल्य है और सम्पूर्ण क्रिया पुण्य रूप तालाब बावली आदि के जल के तुल्य है और सम्पूर्ण वेद शास्त्र संस्कृत भाषा वा प्राकृत भाषा में कहे हुए सब ही शास्त्र और सम्पूर्ण मुनि शुभाशुभ कर्म पुण्य रूप हो जाते हैं उस्सी वास्ते हे युधिष्ठिर ! तुम इस परब्रह्म रूपी सागर में लीन हो जाओ ।
श्लोक - स्नात्वा तेन समस्त तीर्थ सलिले स्नातश्च सर्वा पृथ्वी कृत्वा तेन तुलां च सर्व सरितो यज्ञाश्च सर्वे हुताः ।
संसारात्च समुद्धृताः स्वपितरः त्रैलोक्य पूज्यस्तथा ।
मुक्त्वा ब्रह्म विचारणे क्षण मपि स्थैर्यं मनः प्राप्नुयात् ।।
अर्थ- जिसका मन ब्रह्म के विचार में क्षण मात्र भी स्थिर होगया उसने सम्पूर्ण तीर्थों के जल में स्नान सम्पूर्ण पृथ्वी का दान हजारों यज्ञों का लाभ सम्पूर्ण देवताओं का पूजन और इस संसार से अपने पितरों का उद्धार कर लिया ।
पाप - तीर्थ में पूजनीय वस्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोहा- ध्यान धरूं ओंकार का, व्यापक ब्रह्म प्रतीक।
लगे मुमुक्षुन के हिये, ज्ञानामृत यह नीक॥

अर्थ- व्यापक ब्रह्म प्रतीक (मूर्ति) जो ओंकार है, उसका ध्यान धरता हूं ताकि यह "ज्ञानामृत" नामक पुस्तक मुमुक्षु भव्यों को अच्छी लगे।

भावार्थ- जिस प्रकार शालिग्राम तथा नर्मेश्वर की प्रतिमा को श्रद्धा तथा विश्वास पूर्वक पूजन करके विष्णु तथा शिव का परोक्ष ज्ञान होता है। इसलिये ये शालिग्राम तथा नर्मेश्वर को प्रतिमा को प्रतीक कहते हैं। उसी प्रकार प्रणव की उपासना द्वारा जिज्ञासु पुरुष व्यापक ब्रह्म का साक्षात्कार (अपरोक्ष) करता है इसलिये प्रणव ब्रह्म का प्रतीक है।

श्लोक- प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते।
अप्रमत्तेन वेधव्यं शरवत्तन्मयो भवेत॥

अर्थ- प्रणव (ओंकार) को धनुष, जीवात्मा को शर, और उस ब्रह्म को तल्लक्ष्य कहा गया है, साधवान होकर बेधन करने योग्य है। अर्थात प्रणव रूपी धनुष पर जीवात्मा रूपी बाण को चढ़ाकर सावधानी पूर्वक अर्थात अन्तःकरण तथा इंद्रियों को वश में करके बेधे (मारे) तात्पर्य यह जीवात्मा बाण की तरह ब्रह्म में मिलकर तन्मय होजाय॥

ओंकार जो यह एक अक्षर है सो ही यह सब जगत है, भूत भविष्य और वर्तमान जो ये तीन काल हैं सो सब ओंकार ही है और जो इस तीनकाल से परे अर्थात जिसमें तीन काल कालित हैं वह ब्रह्म भी ओंकार ही है। ॐ जो यह एक अक्षर है सो ब्रह्म है इसलिये ॐ हे अर्जुन! सब वेदों में मैं ओंकार हूं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ ॐ कार में तीनों देवता हैं ॥

"अकार उच्यते विष्णु - उकारश्च पिता मतः ।
मकार उच्यते रुद्रो, तत्परं ज्योतिरोमिति ॥"

अर्थ = अर्थात् अकार विष्णु, उकार ब्रह्मा तथा मकार रुद्र = कहाता है. और उससे परे जो अमात्रा है वह ज्योति (साक्षी) कहलाता है । इस प्रमाण से ओंकार में विष्णु ब्रह्मा इत्यादि शब्द हैं अतः शब्दों का समूह होने से ओंकार वाक्य है । प्रथम के अर्थात् रूप तीन चरणों को छोड़कर चौथे-चरण (साक्षी) में लक्षणा - (चिन्तन) करने से अपने स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान रूप फल होता है क्यों कि केवल चौथा-चरण साक्षी होने से अपना शुद्ध स्वरूप ही है । अपना स्वरूप किसी को परोक्ष नहीं है । और उस साक्षी का ब्रह्म से अभेद होने से अपने से भी ब्रह्म का अभेद ही सिद्ध होता है ।

॥ चारों वर्णों के सामान्य धर्म ॥ (मनुस्मृति)

सत्यं दमस्तपः शौचं, सन्तोषो ह्रीः क्षमार्जवम् ।
ज्ञानं शमो दया ध्यानमेष धर्मः सनातनः ॥१॥

अर्थ - सत्य दम तप शौच सन्तोष ह्री, क्षमा आर्जव, ज्ञान शम, दया और ध्यान ये ब्राह्मणादि चारों वर्णों के सनातन धर्म हैं ॥

चारों वर्णों के विशेष धर्म

क्षोन - (अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

ब्राह्मण क्षत्रि

जन्मनाजायते शूद्रः संस्कारेण द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ - सृष्टि के आदि काल में सर्वेश परमेश्वर ब्राह्मणों के लिये वेदों का पढ़ना तथा पढ़ाना, यज्ञ करना तथा कराना और दान देना तथा लेना ये छः कर्म बनाये॥

श्लोक - क्षत्रिय
प्रजानां रक्षणं दान, मिज्याध्ययन मेवच ।
विषयेष्व प्रसक्तिं च, क्षत्रियस्य समादिशत॥२

अर्थ = प्रजा की रक्षा दान यज्ञ अध्ययन और विषयों में अनासक्ति इत्यादि क्षत्रिय के धर्म कहे गये॥

श्लोक - वैश्य
पशूनां रक्षणं दान. मिज्याध्ययन मेवच ।
वणिक पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषि मेवच॥

अर्थ = पशुओं की रक्षा दान, यज्ञ, अध्ययन व्योपार, धन को वृद्धि के लिये सूद लेना और कृषि इत्यादि धर्म वैश्य के लिये कहे।

श्लोक - शूद्र
एक मेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रुषा मन सूयया॥ मनुस्मृति

अर्थ = निन्दा आदि से रहित होकर ब्राह्मणादि तीनों वर्णों की सेवा करनी यह धर्म शूद्र के लिये कहे।

- चारों वर्णों के विशेष धर्म बताये गये हैं ....

गीता में भी - चारों वर्णों के विभाग गुण कर्म अनुसार - बताये हैं॥

पांच महायज्ञ - देवयज्ञ (अग्नेहोत्रादि) ऋषियज्ञ (वेदपाठ संध्यागायत्री जपादि)
पितृयज्ञ - (तर्पण श्राद्धादि) मनुष्ययज्ञ (अतिथि सेवा) भूतयज्ञ (बलिवैश्व)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवान ने गुण कर्मों के विभाग के अनुसार चारों वर्णों को बनाये।

श्लोक) चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।
तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्य कर्तारमव्ययम्॥
गीता. ४।१३

अर्थ - तथा हे अर्जुन! गुण और कर्मों के विभाग से ब्राह्मण - क्षत्रिय वैश्य और शूद्र मेरे द्वारा रचे गये हैं। उनके कर्ता को भी मुझ अविनाशी परमेश्वर को तू अकर्ता ही जान॥

श्लोक) न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः। गीता १८ ४०
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात् त्रिभिर्गुणैः॥

अर्थ - हे अर्जुन! पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा वह कोई भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से रहित हो क्योंकि यावन्मात्र सर्व जगत त्रिगुणमयी माया की विकार है।

श्लोक) ब्राह्मण क्षत्रिय विशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभाव प्रभवैर्गुणैः॥ गीता १८।४१

अर्थ - इसलिये हे परंतप! ब्राह्मण क्षत्री-यों वैश्यों के तथा शूद्रों के भी कर्म स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों करके विभक्त किये गये हैं। अर्थात पूर्व कृत कर्मों के संस्कार रूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के अनुसार विभक्त किये गये हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक ब्राह्मण } शमो दमस्तपः शौचं, क्षान्ति रार्जव मेव च । गीता १८ ४२
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं, ब्रह्म कर्म स्वभावजम् ॥

अर्थ= शमो: अन्तःकरण का निग्रह (दम= इन्द्रियों का दमन, बाहर भीतर की शुद्धि धर्म के लिये कष्ट सहन करना, और क्षमाभाव एवं मन इन्द्रियां और शरीर की सरलता आस्तिक बुद्धि शास्त्र विषयक ज्ञान और परमात्मा तत्त्व का अनुभव भी ये तो ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं ॥

श्लोक क्षत्रिय } शौर्यं तेजो धृति र्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम् ।
दान मीश्वर भावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ॥ १८ ४३

अर्थ= शूरवीरता तेज धैर्य, चतुरता और युद्ध में भी न भागने का स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव अर्थात निःस्वार्थभाव से सब का हित करने का शास्त्रानुसार शासन द्वारा प्रेम के सहित पुत्र तुल्य प्रजा को पालन करने का भाव ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ॥

वैश्य श्लोक } कृषि गौरक्ष वाणिज्यं, वैश्य कर्म स्वभावजम् । गीता
परिचर्यात्मकं कर्म - शूद्रस्यापि स्वभावजम् ॥ १८ ४४

अर्थ= तथा खेती, गौ पालन और क्रिय विक्रयरूप सत्य व्यवहार ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं । और सब वर्णों की सेवा करना यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है ॥

सारांश = उपरोक्त वर्णों के स्वाभाविक गुण कर्म को अनुसार धर्म पालते हुए अपने अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य भगवत प्राप्तिरूप परम सिद्धि को प्राप्त होता है । परन्तु जिस प्रकार वे अपने स्वाभाविक कर्म में लगा हुआ मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है ॥ गीता १८ । ४५ ।

विशेष गीता में परमसिद्धि के विषय में देखो ।
१८ । ४६ । ४८

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(सन्ध्याकी आवश्यकता)

ब्राह्मण क्षत्रीऔर वैश्य इन तीनों वर्णों का अधिकार सन्ध्या में है। ये तीनवर्णी सन्ध्याकरकेही और कर्म के अधिकारी होते हैं। सन्ध्यातानपुरुष के किये हुए सभी कर्म निष्फल होजाते हैं। जैसा शास्त्र में कहा है॥

श्लोक- न गृह्णन्ति सुताः पूजा पितरः पिण्ड तर्पणम्।
स्वेच्छया द्विजातिश्च त्रिसन्ध्यो रहितस्य च॥

अर्थ- जो तीनसंध्यासेरहित स्वेच्छाचारी द्विजाति (ब्राह्मण-क्षत्री. वैश्य) हैं उनके पूजा को देवता तथा पिण्ड तर्पणको पितर ग्रहण नहीं करते और भी कहा है।

श्लोक- सर्व कर्म परित्यज्य सूतके मृतके तथा।
नित्यजेन्मानसी संध्या न त्यजेत शिव पूजनम॥

अर्थ- जन्म सूतक तथा मरण सूतकमें सम्पूर्ण शुभ कर्मों को त्याग करके भी मानसिक संध्या तथा मानसिक शिव पूजन न त्यागे। क्योंकि-

श्लोक- विप्रो वृक्षस्तस्य मूलंच, सन्ध्या वेदाः शाखा धर्म-कर्माणि पत्रम्। तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्॥

अर्थ- विप्ररूपी वृक्षकी जड़ सन्ध्या है और वेद शाखा (डालियां) तथा धर्म कर्म पत्ते हैं इसलिये जड़ (सन्ध्या) की रक्षा यत्न पूर्वक करनी योग्य है क्योंकि जड़ (सन्ध्या) के नष्ट होजानेमें शाखा (वेद) पत्ते (धर्म-कर्म) नहीं रहसकते।

और भी कहा है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदि पुरुष ब्राह्मण है, तो स्त्री भी ब्राह्मण है। जैनधर्म का
एकपक्षी आग्रह उतना ही स्त्री को भी। स्त्रियों को
दीक्षा का अधिकार है यह भगवती श्रुति में कहा गया है।
मोक्ष के [illegible] उपदेश और शास्त्रों को सुनना, एकान्त स्थल में
आत्मा का ध्यान करना, और सत्यावबोधाण करना।
यह स्त्रियों के लिये महाभारत के मोक्ष धर्म जिता गीत
पुत्र माता जनक के संवाद की चतुर्थी टीका में
(अध्याय २ पाद ४ के ३६ वें सूत्र से २ वें सूत्र तक)
इन वाक्यों स्त्रियों का वर्णन लिखा है इन प्रमाणों
से स्त्रियों को भी वेदान्त शास्त्र की पूर्ण अधिकारिणी
होना सिद्ध होता है। (दुष्टिमती मति नीति स्त्री यदि
कहावत तो योगाभ्यास विशेष रूप से ब्रह्मचर्य पालन
करसकती है यदि [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रमाण में अल्प होने. वैधव्य से दुःखों से
बचने. अपना जीवन सुखमय बनाने की इच्छा से
गोप, लिप्त होते. वे स्त्रियों को उन के पति
(आत्मा) का दर्शन करा, परोक्ष अपरोक्ष का
ज्ञान देकर उनको उसी रीति से प्रसन्नता
से मोक्ष की दीक्षा देते। भोग करने की वासना
त्यागने की आवश्यकता नहीं। संसार में रहते हुए
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर मुक्ति का मार्ग
बता सकते।
जो स्त्रियां ज्ञान की आंधी दौड़ में सेवा
के सम्मुख से भगवान की भक्ति
आदि के भावना चक्षु में प्रेम रस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकाहं जपहीनस्तु सन्ध्या हीनो दिन त्रयम्।
द्वादशाहमनग्निश्च शूद्र एवं न संशयः॥

अर्थ = जो ब्राह्मण एकदिन गायत्री के जप से रहित तीन दिन सन्ध्या से रहित तथा १२ बारह दिन अग्निहोत्र से रहित होजाय तो वह शूद्र ही होजाता है इसमें संदेह नहीं है और भी कहते हैं

श्लोक: त्र्यहं सन्ध्या विरहितो द्वादशाहं निरग्निकः।
चतुर्वेदधरो विप्र शूद्र एवं न संशयः॥

अर्थ = जो ब्राह्मण तीन दिनतक सन्ध्या से रहित है और बारह दिन तक अग्नि होत्र से रहित है वह चारों वेदों का पढ़ने वाला क्यों न हो निःसन्देह शूद्र है।

(ब्रह्मचर्य-आश्रम) धर्म

मधु मांसाञ्जनं श्राद्धं गीतं नृत्यं च वर्जयेत्।
हिंसां परापवादं च स्त्रीलीला विशेषतः॥
मेखलामजिनं दण्डं धारयेच्च विशेषतः।
अधःशायी भवेन्नित्यं ब्रह्मचारी समाहितः॥

(संस्कार समुच्चय अध्याय २)

अर्थ = मधु मांस अंजन श्राद्ध का भोजन गान नाच हिंसा परायी निन्दा और विशेषकर स्त्रियों की लीला त्यागदे।
मूंजादिकी मेखला कथनी मृगछाला और दंड इन्हें विशेषकर धारणकरे तथा ब्रह्मचारी सदा सावधानीसे पृथ्वीपर शयन करे और भी पुनः ब्रह्मचारीको चाहिये कि शरीर में तेल इत्यादि का मर्दन न करे छत्र न लगावे जूता न पहने ताम्बूल न खाय और दिनमें सोवे न। तथा स्त्रीका कभी मैथुनसे बचा रहे॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आठ प्रकार के मैथुन से बचे :- स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, एकान्त में बार्ता अथवा गोपनीय अंगो का अवलोकन, अध्यवसाय (उपभोग के लिये संकल्प प्राप्ति के लिये प्रयत्न) और क्रिया निष्पत्ति (प्रत्यक्ष प्रसंग) ये आठ प्रकार के मैथुन त्याज्य हैं।

ब्रह्मचारी नित्य प्रातः सन्ध्या, गायत्री का जप अग्निहोत्र, देव स्तुति, माता-पिता और गुरु की सेवा विद्याध्ययन स्नान, त्यक्त अन्न इत्यादि कर्म को प्रति दिन भिक्षा माँगे। धोती चादर और साड़ी स्वच्छ रक्खे।

गृहस्थ-धर्म

गृहस्थ को चाहिये कि नित्य प्रति पंच यज्ञ करे धौम्य शास्त्र में कहा है।

श्लोक : कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भी च मार्जनी।
पंच सूना गृहस्थस्य तासिर्स्वर्गं न विन्दति॥

ओखली, चक्की, चूल्हा, जल रखने का स्थान और झाड़ू इनके द्वारा गृहस्थ के यहाँ पांच प्रकार की हिंसा प्रतिदिन होती है इसलिये गृहस्थ को स्वर्ग प्राप्त नहीं होता जब स्वर्ग ही नहीं तो मोक्ष कहाँ। इन हिंसाओं की निवृत्ति के लिये शास्त्रों में पंच यज्ञ वर्णित किये हैं उसको प्रति दिन करने से हिंसा जन्य पाप नहीं होता। पंच यज्ञों का वर्णन याज्ञवल्क्य स्मृति के इस प्रकार है—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक = देव यज्ञो भूत यज्ञः पितृ यज्ञ स्तथैव च ।
ब्रह्म यज्ञो नृ यज्ञश्च पंच यज्ञाः प्रकीर्तिताः ॥

अर्थ = ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ पितृ यज्ञ भूतयज्ञ मनुष्य यज्ञ - इन्हें नृयज्ञ याने अतिथि यज्ञ भी कहते हैं ।

ब्रह्मयज्ञ = नित्यप्रति वेदका पाठ तथा गायत्री का जप ब्रह्म यज्ञ कहलाता है ।

पितृयज्ञ - नित्य प्रति तर्पण (पितरोंको जल देना) तथा अमावस्या आदि पर्वों पर पितरोंको पिंडदान देनेको पितृ यज्ञ कहते हैं ।

भूतयज्ञ = गौ, कौवा, कुत्ता आदि जीवोंको नित्यप्रति तैयार अन्न (भोजन) में से भाग देनेको भूत यज्ञ कहते हैं ।

देवयज्ञ = गायत्री आदि मंत्रों से हवन करने को देव यज्ञ कहते हैं ।

मनुष्य यज्ञ ब्रह्मचारी संन्यासी या कोई ईश्वर का भक्त अथवा किसी भी जाति या वर्णका मनुष्य भूखा - प्यासा या शीत उष्ण से मारा हुआ भिक्षुक अकस्मात दरवाजे पर आजाय उनका सत्कार करना - यथा शक्ति भोजन वस्त्र आदि देकर प्रसन्न करना ।

(अत्रिजी ने छः प्रकार के भिक्षुक कहे हैं)

श्लोक ब्रह्मचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरु पोषकः ।
अपत्यंग क्षीण वृत्तिश्च षडेते भिक्षुकाः स्मृताः ॥

अर्थ = ब्रह्मचारी, संन्यासी, विद्यार्थी, गुरु को पालन करने वाला शिष्य पथिक और दरिद्री ये छः प्रकार के भिक्षुक कहे गये हैं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(अधिक धन से हानि)

प्रश्न ? = धनवान होने की इच्छा पाप पुण्य नहीं होती।
क्यों ? अधिक धन कमाने की चेष्टा भी परमार्थ के साधन में विघ्न रूप होती है। धन का मोह मनुष्य की बुद्धि को अनैश्वर्यात्मिका बना देता है। रुपया कमाने के बटोरकर रखने की बात तो—
और भी बुरी है, बढ़ता हुआ धन ही उत्तम पोषक और पोषक होता है। रुका हुआ तो जैसे हृदय में रक्त के संचालन की क्रिया बन्द होने पर वह दूषित होकर मृत्यु का कारण बन जाता है वैसे ही पारमार्थिक भावों के विनाश की कारण होती है। साधारण बात भी ध्यान में रखने की है। कि जो कुछ भी धन कमाया जाय वह न्याय व धर्म से आधा परोपकार होना चाहिये अन्यायका धन तो अपने या पराये जिसके भी काम में आवेगा बुद्धि को बिगाड़ कर आत्मा का पतन ही करेगा। अतः कल्याण के इच्छुक भाई बहनों को सदा सचेत रहना चाहिये।

श्लोक = मनोहि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धं वा शुद्ध मेव च।
अशुद्धं काम संकल्पं शुद्धं काम विवर्जितम॥ अमृतनादोपनिषद्

अर्थ = शुद्ध और अशुद्ध भेद से मन दो प्रकार का बताया है। काम और संकल्प युक्त मन अशुद्ध। और वासना रहित मन शुद्ध है।
काम संकल्प वाला मन चंचल होता है। और वासना रहित होकर स्थिर होता है।
इसी स्थिर शुद्ध चित्त में जीव ब्रह्म का भेद ज्ञान नाश करके और हम चैतन्य स्वरूप ब्रह्म हैं। ऐसी दृष्टि वाला ज्ञान उदय होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे रामजी जिस पुरुषने आत्माके विवेचन शास्त्रों से श्रवण किये हैं। जो आत्मा नित्य है शुद्ध है ओर ज्ञान स्वरूप है। और तीनों शरीर से भिन्न है ऐसे गुणों करी आपको मानता है और विषय भोगने की सदा तृष्णा रहती है जो किसी प्रकार इंद्रियों के विषय मेरे को प्राप्त होवें ऐसा जो पुरुष है सो अज्ञान बद्ध है।

हे रामजी प्रवृत्ति मार्ग एक निवृत्ति मार्ग। प्रवृत्ति संसार मार्ग है निवृत्ति आत्मज्ञान मार्ग है॥ उन में जिस पुरुष ने निवृत्ति मार्ग धारा है और प्रवृत्ति मार्ग विषे वर्तता है॥ प्रवृत्ति कहिये जो बहिर्मुख विषयकी ओर वर्तता है और इन्द्रियों के विषयकी वांछा करता है॥ विषयतें उपरांत नहीं होता तिनकरी तुष्ट मान होता है और स्वरूप का अभ्यास नहीं करता ऐसा पुरुष अज्ञान बद्ध होता है।

हे रामजी जो ते उत्तम शुभ कर्म करता है परंतु विषे उनके फलों को धारि रखी॥ उस पुरुष ज्ञान के निकट वर्ती है तो भी ज्ञान बंध है और जिसको आत्म विषे प्रीति भीति विषयों को चिंतवता है और आपको उत्तम मानता है सो ज्ञान बद्ध कहाता है॥

उनको जो आत्म तत्त्व का निरूपण जथार्थ करता है और स्थिति नहीं उस ज्ञान आभास ते ज्ञान का फल तिसको प्रत्यक्ष साक्षात्कार नहीं॥ ~~और जिसको प्राप्त हो दृढ़ता नहीं है~~

आगे देखो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अरु जिस पुरुषने सिद्धता पाई है. अरु ऐश्वर्य पाया है. तिसकी आज्ञा बड़ा जानता है और अज्ञान ते रहित है. सो ज्ञानवंथ है ॥

हे रामजी ने हृदयास करिकै जो ज्ञानकी प्राप्ति होती है — तिसकरी शांति का प्रकाश होता है. जबलग शांति नहीं प्राप्त होती तबलग आपको बड़ा न माने। हे रामजी बड़ा जो होता है सो ज्ञान करि होता है। जबलग ज्ञान नहीं उपजा तबलग आत्मा जो परायण होवे अभ्यास जतन करे. छोड़ न देवे अरु चेष्टा शुभ करे। शुभ चेष्टा करी उपजीविका उत्पत्ति करणी. प्राणों की रक्षा के निमित्त अरु प्राणों को. बल जिज्ञासा के अर्थ-धारे ॥ अरु बल जिज्ञासा इस निमित्त है. जो तत्त्वा समुद्र रूपते मुक्त होवे। बहुरी संसार न होवे यह इसी निमित्त आत्म परायण होवे। जब आत्म परायण होवेगा तब दुःख सब मिटि जावेंगे। जैसे सूर्य के उदय हुए अन्धका नष्ट होजाता है. तैसे आत्मपद के प्राप्त हुए दुःख सब नष्ट होजाता है. तिसपद को प्राप्त होने का उपाय इह है जो सत शास्त्रों ते आत्मा के उपदेश सुने है. तिनको समुझकरी बारम्बार अभ्यास करना। और अनात्म दृश्य ते उपरामता होणा तिनको मिथ्या जाणी वैराग्य करणा। इसकरी आत्म पदकी प्राप्ति होती है

विप्र सलाये जात है मान बड़ाई वंश।
निश्चय करके देखलो रावण कैरव कंस॥
विप्र वंश की असप्रशुताई — अमल होय जो तुलसी डारी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क्रोध त्याग की महिमा)

शुक्राचार्यजी अपनी कन्या देवयानी से कहते हैं। देवयानी! जो नित्य दूसरों के द्वारा की हुई अपनी निन्दा को सहन लेता है तुम निश्चय जानो। वह उसने सब को जीत लिया। जो बिगड़े हुए घोड़े के समान उमड़े हुए क्रोध को रोक लेता है उसी को साधु लोग जितेन्द्रिय कहते हैं। केवल घोड़े की लगाम हाथ में रखने वाले को नहीं। देवयानी! जो पुरुष उमड़े हुए क्रोध को अक्रोध के द्वारा शान्त कर देता है तुम निश्चय जानो उसने सब को जीत लिया। जो पुरुष उमड़े हुए क्रोध को क्षमा के द्वारा शान्त कर देता है। और सर्प के द्वारा पुरानी केंचुली छोड़ने के समान क्रोध का त्याग कर देता है, असल में वही पुरुष कृतज्ञ माना है। जो क्रोध को रोक लेता है। निन्दा को सह लेता है। और दूसरों के द्वारा सताये जाने पर भी उनको बदले में नहीं सताता वही अर्थ (परमात्मा की प्राप्ति) का अधिकारी होता है। जो सौ वर्ष तक बिना कुछ खाये पीये रहे और जो कभी क्रोध न करे। इन दोनों में क्रोध न करने वाला पुरुष श्रेष्ठ है। — महाभारत आदि पर्व

नोट - अविद्या अहंकार राग और द्वेष आदि दुष्ट स्वभाव से तथा नीच पुरुषों के संग से पतन होने की राह प्राप्त होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(जीव और ईश)

1 प्रत्येक पिंड में जो अन्तः करण से सहित आनन्द स्वरूप चेतन है वह — जीव कहलाता है। सर्वव्यापी चेतन एक होने पर भी अन्तः करण युक्त जीव अनेक होते हैं अनेक क्रिया होते हैं जैसे कहीं — सर्व व्यापक आकाश अनेक घट रूप उपाधियों के कारण अनेक — घटाकाशों के रूप में दिखाई देता है।

2 महासागर में जल अखण्ड रूप से एक समान व्याप्त है किन्तु जब — हमारी दृष्टि उसके किसी एक विशेष सूक्ष्म स्थान पर जाती है तब उसे जल बिन्दु कहते हैं। और जब सम्पूर्ण जल का विचार करते हैं तब उसे महासागर कहते हैं। एक उदाहरण और लीजिये हमारे पास चौसठ पैसे हैं। उनमें से एक को तो पैसा कहते हैं और सारे समुदाय को रुपया। प्रत्येक — टुकड़ों में तांबा और राजाका सिक्का होता है। इन राजा के सिर से युक्त तांबे के एक टुकड़े को पैसा कहते हैं और सबको मिलाकर एक रुपया कहा जाता है। वैसेही एक एक देह में व्याप्त अन्तः करण युक्त चेतन को जीव कहते हैं। और सब देहों में व्याप्त अन्तः करण युक्त चेतन को ईश ईश्वर परमेश्वर या भगवान कहा जाता है।

जीवको अपने देहकी अभिमान होता है। परन्तु ईश को सभी स्थितियों से होता है। देहमें व्याप्त संस्कार युक्त चेतन को जीव कहते हैं। और संस्कार रहित चेतनको चेतन आत्मा कूटस्थ साक्षी आदि नामों से कहा जाता है। इसीप्रकार सारी सृष्टि में व्याप्त सब जीवोंके संस्कार समुदाय सहित चेतनको ईश ईश्वर परमेश्वर या भगवान कहते हैं। और संस्कार समुदाय रूप उपाधि से रहित चेतनको ब्रह्म परब्रह्म परा — विभूति इत्यादि नामसे कहते हैं।

(आगे देखिये)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यों तो जीव, आत्मा = ईश और ब्रह्म सब एकही सच्चिदानन्द है।
जीव का अज्ञानावरण विकार यानी अज्ञान या अविद्या से युक्त है इसी-
अविद्या के कारण वह स्वयं आनन्द घन होने पर भी अपने को दुखी-
मानता है। तथा पूर्ण होने पर भी अपूर्ण मानता है। इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड
के आगे. एक हेला इतना अल्प है कि नहीं के बराबर है। इसीसे उस
हेला के अभिमानी जीव का ज्ञान भी अत्यन्त अल्प है। इसलिये वह-
अज्ञानी कहलाता है। अल्प उपाधियों में व्याप्त जीव अल्प का अभि-
मानी होने से अल्पज्ञ है और सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होने के कारण
ईश सर्वज्ञ एवं स्वयंसिद्ध है, इसीसे ज्ञान उसकी उपाधि कहा जाता है।
वे भगवान सर्वशक्तिमान सत्य संकल्प, पूर्ण दया और पूर्ण करुणा आदि
दिव्य गुणों से विभूषित हैं। इसी से सगुण विभूति या सगुण ब्रह्म
कहलाते हैं। अज्ञानी जीव अपूर्ण, निःसहाय और दुखी होने के कारण पूर्ण
एवं सर्वशक्तिमान परमेश्वर की कृपा सम्पादन करना चाहते उनकी-
उपासना मांगे. मन बुद्धि स्वभावतः होती है, भगवान के बिना जीव भाग्यहीन
होता है. जीव के एकमात्र सहारे भगवान ही अनन्य शरण गति ही इष्ट-
अत्यन्त उत्कृष्ट और अविच्छिन्न प्रेम है: क्योंकि तत्त्वतः तो वे एकही हैं
जैसे जीव का वे ही भगवान का भी जीव पर स्वभाविक प्रेम है. जीव-
भगवान के साथ अपना सम्बंध जानते. उसका भूल स्वभाव से ही
कोई प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है. परन्तु अज्ञान वश सम्बंध को भूले हुये
तो भी स्वभाविक होने के कारण वह प्रेम सहजता में प्रगट हो सकता है। परन्तु-
वह विषयों में इतना लिपटा हुआ है कि विषयों के दुःख भोगने के लिये भी
यदि वह एक क्षण के लिये विषयों से मुंह मोड़ ले तो वह सहजही-
ईश के तरफ मुड़ सकता है. और उसे देख पाये—
भगवान तो सदा सर्वदा [illegible]। जिसके [illegible]
त्रिलोक में उसके [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वयं ब्रह्मा स्वयं विष्णुः स्वयमिन्द्रः स्वयं शिवः ॥
स्वयं विश्वमिदं सर्वं, स्वस्मादन्यन्न किञ्चन ॥

अर्थात् आत्मा की एकता को मानोगे तो ब्रह्मा, विष्णु आदि भेद अवतार कैसे बनेगा, इस शंका का उत्तर कहते हैं, स्वयम् इति ॥ स्वयं आत्मा ही ब्रह्मा चतुर्मुख है। आत्मा ही चतुर्भुज विष्णु है। आत्मा ही देवराज इन्द्र है, आत्मा ही शंकर रूप है, यह देवता जैसे ही बृहस्पति आदि अन्य देवता भी आत्मा ही है। जैसे एक नट नाना रूप रंग भूमि में, दिखावे है, तैसे एक आत्मा ही स्थावर जंगम रूप होकर दीखे है। आत्मा से भिन्न लेश मात्र भी नहीं है ॥

अन्तः स्वयं चापि बहिः स्वयं च,
स्वयं पुरस्तात् स्वयमेव पश्चात् ॥
स्वयं ह्यवाच्यां स्वयमप्युदीच्यां,
तथोपरिष्टात्स्वयमप्यधस्तात् ॥

अर्थ = स्वप्न मनोरथ में प्रतीत जगत् मानसिक वा आधिभौतिक सर्व आत्मा ही है, तैसे जाग्रत में दीखता स्थूल प्रपंच आत्मा है, पूर्व दिशा में स्थित पदार्थ आत्मा है, और पश्चिम दिशा में स्थित पदार्थ आत्मा ही है, तैसे दक्षिण दिशा में स्थित आत्मा ही है, उत्तर दिशा में स्थित आत्मा है। तैसे ही ऊपर स्वर्ग अन्तरिक्ष में स्थित और पाताल आदि में स्थित सर्व पदार्थ आत्मा ही है।

इसका = जैसे तरंग फेन आवर्त बुद बुदे आदि सर्व जल के अंश स्वरूप करके जल ही है, अन्य नहीं है, तैसे ही देह से आदि अहंकार पर्यन्त चेतन रूप ही है और शब्दादि विषय समूह सर्व एक रस निर्मल चेतन रूप ही है चेतन से अतिरिक्त कुछ नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहंकार —

विवेक ज्ञान से छेदन हुआ भी अहंकार लेशमात्र प्रतीत होवे है।
तिसको भी अनर्थ की कारणता निरूपण करे हैं। समूलकृत
हति। अतिबली अहंकार छेदन किया हुआ भी अनात्म पदार्थों के
प्रवाह के सन्मुख हुआ भूत भावी पदार्थों के चिन्तन का प्रकृति
रूप चित्त के रंके पुनः स्मृत होवे है। जैसे कि मैं बड़ा कुलीन था
राजा था। धनवान था, सो मैं अब सर्व इच्छा को त्याग के विरक्त
हुआ हूं। मेरे समान को ईश्वर त्यागी नहीं है इत्यादि रूप
अहंकार लेश जिस समय उदय होवे उसी समय प्रतीति मात्र
करके उत्पन्न होवे जैसे वायु करके उत्थान किया मेघ वर्षा ऋतु
में मकानों को गेरना आदि अनेक विक्षेप करता है। तैसे तीव्र
स्वल्प अहंकार भी समाधि से उत्थान वैराग्य की शिथिलता
अमानित्व आदि साधनों के भंग को करता है तिस कारण इस
मरे हुए अहंकार का स्मरण मात्र भी न करना चाहिये।
मृतक के जीवन में इच्छा ना करे = निगटहा होते।
अहंकार को विनाश करके विषयों के चिन्तन द्वारा अहंकार शत्रु को =
जीवन को समय न देना चाहिये। खोही अहंकार के जीवन का कारण है
जैसे = अति सूखे हुए जंबीर वृक्ष के जीवन को हेतु जल है। और
तैसे मरे पुरुष का भी वासना वश से जन्मान्तर होता है।
तैसेही नष्ट हुए अहंकार का भी वासना द्वारा पुनर्जीवन
बन सके है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(बड़े का आसरा)

रहिये लटपट काटि दिन बरु घामें मा सोय।
छाँह न बाकी बैठिये जो तरु पतलो होय॥
जो तरु पतलो होय एकदिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयार टूटि तब जाय खजैहै॥
कह गिरधर कविराय छाँह मोटे की गहिये।
पातो सोफे रहाय मूल कोया मा रहिये॥

दुष्ट रहै जा ठौर पर ताको करै विचार।
आग जरोंहै नाखिये जौ पै सीरो छार॥
धन अनेक दीन्हो पढ़ो हो अनेक गुन युक्त।
कर में आवत छेनहू छिन में दरो जात॥
तुलसी ओहन नाव में फिरि नाहीं जल मांह।
बूड़े न बूड़न देत है जाकी पकड़े बांह॥
हा मारो जब उपजै उठो क्रोध जब होय।
विना शील दुर्लभ नहीं जानत है सब कोय॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ शोक किसको नहीं छूता ॥ १

सुखं वा यदि वा दुःखं प्रियं वा यदि वाप्रियम् ।
प्राप्तं प्राप्त मुपासीत हृदयेना पराजितः ॥
शोकस्थान सहस्त्राणि. भय स्थान शतानिच ।
दिवसे दिवसे मूढ मावि शन्ति न पंडितम् ॥
बुद्धि मन्तं कृत प्रज्ञं शुश्रूषु मन सूयकम् ।
दान्तं जितेन्द्रियं चापि शोको न स्पृशते नरम् ॥
एतां बुद्धिं समास्थाय गुप्त चित्तश्चरेद् बुधः । द
उदयास्त मयज्ञं हि । न शोकः स्पृष्टु महति ॥

यः सुखको चाहे दुःखको अच्छा लगे चाहे बुरा लगे। जैसी भी दशा आकर पड़े उसको हृदय से हारे बिना भोगे। मूढ़ मनुष्यको शोक करनेके हजारों स्थान हैं। और भय भीत होनेके सैकड़ों स्थान (अवसर) प्रतीदिन प्राप्त होते हैं परन्तु विचार पंडितके ऊपर उनका प्रभाव नहीं पड़ता। बुद्धिमान आगे-पीछेका विचार करनेमें चतुर शास्त्रको श्रवण करनेवाले ईर्षा रहित मनको वशमें रखने वाले और जितेन्द्रिय मनुष्यको शोक नहीं छूता। विद्वान मनुष्य ऐसी बुद्धिका आश्रय लेकर चित्तकी रक्षा करता हुआ संसारका व्यवहार चलावे। जो मनुष्य जगतकी उत्पत्ति और लय के स्थान रूप परब्रह्मको जानता है उसको शोक नहीं छू सकता॥

(महाभारत मोक्षधर्म पर्व १७४/३१/३२)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रामजी ने पूछा - हे मुनिस्वर आत्मपद अत्यन्त कैसे अकथ अचिन्त्य है अर्थात् इन्द्री अरु मनका विषय नहीं इन्द्रियों करी ग्रहण नहीं होता अरु मनके चिन्तवनसे भी नहीं आता॥ जो बड़े महापुरुष हैं तिन करके कहने में भी नहीं आता ऐसा जो अचेत चिन्मात्र आत्म तत्त्व है सो शास्त्र करी कैसे जाना है? शास्त्र तो आवेष्टे प्रतियोगी करी कहते हैं सो सविकल्प है॥ सविकल्प करके निर्विकल्प पद कैसे जाना जाता है॥ गुरु अरु शास्त्र करके जानिये॥ और विकल्प रूप जो शास्त्र तिन विषे भी सार अर्थ पाता है॥ परन्तु विकल्प परिच्छेद प्रति योगी जो तिस लायक है तिन करके स्वात्मा क्यों करी जानिये॥ वासेते हे रामजी गुरु और शास्त्र करी नहीं जानता अरु गुरु शास्त्र विना भी नहीं जानाजाता। हे रामजी नानाप्रकार जो विकल्परूप शास्त्र हैं तिन करके निर्विकल्परूप कैसे जानता है॥ परन्तु तिसप्रकार इनकी जाना है सो श्रवण॥ हे रामजी एक व्यवधान हेतुके एकटिक थे एक स्थानों विषे स्थित होते हैं तिनको आपसमें आनप्रकार उत्पत्ति नहीं होती॥ जैसे वसन्त ऋतु विषे मंजरी जो पुष्पकी उत्पत्ति होती है सो भोजनभी नहीं जुड़ता॥ जैसे कमल जलसे निकसे नेत्र दृश्य जाता है॥ तैसे संदेहादिक जो कि एकटिक आपदा हती थी सो दूर करी सुदृश्या॥ तत्त्व उनने विचार किया जो किसीप्रकार हमारी उर पूर्णता चले॥ जिसके वे वनमें जाकी लकड़ी को लेने गये हमारे अन्न अरु पोषण चलो इसप्रकार वह अपने कार्यको गये॥ काल व्यतीत हुआ कोई एक व्यक्ति को पड़ा देखा तो उसको बेचने को माणिक्य मोती पाया॥ इसप्रकार ढूंढते ढूंढते रत्न प्राप्त भये उनको बेचके विशेष ऐश्वर्य प्राप्त भया अरु वह जो ठाकुर अन्न वस्त्रसे रहित भये तहाँ बेचना छोड़ दिया॥ आगे को भी स्थान ढूंढने लगे तो रत्नसे भी विशेष कीमती रत्न मिले॥ सो वो किसी वणिक पृथिवी खोदते रत्नचिन्तामणि प्राप्त हुई॥ जिसके ब्रह्मा रुद्र इन्द्र आदिके समान ऐश्वर्य को प्राप्त हुए॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सासंग्रा - हे स्वामी जीतने उद्यम करके बनवी सेवनाकी अहें बड़ा सुखदीला
देखो चाहिये लकड़ी उठाते भये - वाहीं वृक्षके लकड़ी प्राप्त हुई उसमें दुखदीया और
वाहीं रत्नभी मिले इनसे और भी ऐश्वर्य मिलता वाहीं चिंतामणी प्राप्त भई
तिनसे सब संताप मिट गये - तिनसे परम ऐश्वर्यवान हुए - पानी सबको बनसे
ही प्राप्त भया और जो बनके निकट नहीं गये घरही बैठे रहे सो दुखितहो
कीए प्राणोंको त्यागते भये ॥

इस पर रामजी श्रीवशिष्ठजीसे पूछते भये कि हे भगवन यह जो
कीटका वृत्तांत कहा सो इसका तात्पर्य नहीं जाना, उस कीटके जैसे थे
और बन क्या था और आश्रम क्या थी कृपाकरी कहिये ॥

वशिष्ठजी बोले हे रामजी जिसने कुछ जीत देखता है सो सब कीट है
तिनको अज्ञानरूपी आपदा लगी है । अध्यात्मक, आधिभूतक, आधिदैविक
जो तीनों ताप हैं ।

अध्यात्मक - कामक्रोधादिक मानसिक दुख है ।
आधिभूतक = देहके वातपित्त, कफ आदिक विषमते जैसे ज्वर खांसी
अंधे आधिदैविक = जो गहते दुख आनि प्राप्त होजावे जैसे सांप
बिच्छू, शस्त्र लगजावे और अभक्षके भक्षण होजावे चोर पीड़ा
गण ग्रह आदि से नुकसान होजावे ऐसी चिंताको पाके जलतारहे
उपरोक्त तापोंको मिटाने के लिये जो प्रयत्नके सार रूपी विचारके पास
गये उनके ताप मिटके सुखी होत भये । जो अर्थी सुख के निमित्त
शास्त्ररूपी वनको सेवते भये तिनको, तिनको सत्कर्मरूपी लकड़ियां प्राप्त हुई
जिससे नरकरूपी उदरपूर्णिका जो दुःखथा सो निवृत्त भया और स्वर्ग
रूपी सुख पावते भये ।

बहुत समय शास्त्ररूपी वनको सेवते सेवते उपासनारूपी चन्दनरूपी
वृक्ष जिनको प्राप्त भया तिससे और दुखभी निवृत्त भये, विशेष मुक्तिरूप
पावते भये सो अपने इष्टदेवताओंको सेवताहै तब स्वभावहि विशेष सुखी
होपाता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और अन्त स्थानको प्राप्त होता है- बहुरि शास्त्र रूपी वनको ढूंढता है
तब विद्या रूपी विशेष रत्न पाकर विशेष सुखको पावता है। जब-
सत-असत का विद्या इसको प्राप्त होता है। तब सर्व दुःख इसके तह
होजाते हैं। और जो इह जो लाभ प्राप्त होता है सो शास्त्र करके होता है-
क्यों? जैसे अन्य पदार्थ चन्दन लकड़ियां वन विषे उपजते- त्यों ना-
मणि गुप्त थी। — तैसे अब शास्त्र विषे धर्म-अर्थ-काम प्रगटे-
और ज्ञान रूपी चिन्तामणि गुप्त है। जब शास्त्र रूपी वन पृथ्वी को-
वैराग-और अभ्यास रूपी जतन करी खोजे, तब आत्म रूपी चिन्ता-
मणि को पावता है। हे रामजी वन विषे उन चिन्तामणि तब पड़े
क्यों? वहां चिन्तामणि का बनथा। परन्तु जब अभ्यास रूपी तलवार ही
और जीवन में पड़ी है तैसे गुरु शास्त्र रूपी माटी के खोदने वाले है-
तब भला आत्म तक खाने तब आप ही चिन्तामणि वत आत्म
प्रकाश आता है। जैसे माटी के अन्दर चिन्तामणि हो- वैसे ही अविद्या
रूपी पृथ्वी में- दास-अधलोभादि मिटी मिली है-
जैसे मिट्टी के लटने से चिन्तामणि दिखाती है- मिलती है वैसे ही
शरीर से दास-अधलोभादि वासना के लटजाने से-
आत्म प्रकाश स्वयं ही प्रकाशित होता है- जैसे बादल
जाने से सूर्य का तब लगि सुन्दर रूप जो- कैसे दृगहि दिखाई॥
आत्म तत्व को पाने के लिये मन रूपी मैल को हटाने से ही आत्म तत्व
प्राप्ति होती।

जैसे — माटी के खोदने से चिन्तामणि का प्रकाश उपजता है- कहते
क्योंकि चिन्तामणि आगे ही प्रकाश रूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वोदने से यानी मिथ्यात्व से आवरण दूर हुआ तब आत्म चिन्तामणि दिखाई (प्राप्त हुई) वैसे ही गुरुवाक्य के वचन तिनके अभ्यास की अनाः करण सुध होती है (स्वच्छ होती है) तब आत्म सत्ता स्वतः प्रकाश आती है।

गुरु वाक्य के विश्वास की अभ्यास करने से अनाः करण के मैल याने आवरण अलग होजाते जैसे बादलों के हट जाने से सूर्य स्वयं ही प्रकाशित होजाते वैसे ही अनाः करण से मैल रूपी आवरण हटने से आत्म तत्व स्वतः ही प्रकाशित होजाते! गुरु वाक्य तो मलीनता दूर करते और आत्म प्रकाश स्वतः दिखते अस्तु!

(संत के गुण)

इतने गुण जामें सो सन्त। कल्याण

श्री भागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमला कन्त ॥१॥
हरि को भजन साधु की सेवा, सर्व भूत पर दाया।
हिंसा, लोभ, दंभ छल त्यागो, विष सम देखे माया ॥२॥
सहनशील, आसय उदार अति धीरज सीतल विवेकी।
सत्य वचन, सबको सुखदायक, गहि अनन्य व्रत एकी ॥३॥
इन्द्रीजित, अभिमान न जाके, करै जगत को पावन।
भगवत रसिक तासु की संगति, तीनहु ताप नशावन ॥४॥

दिव्य वर्ष-युगों का प्रमाण—
१०० दिव्यवर्ष का - कृतयुग
२०० दिव्यवर्ष का द्वापर
३०० दिव्यवर्ष का त्रेता
४०० दिव्यवर्ष का कलियुग

मनुष्यों के अनुसार प्रमाण (कल्पाण)
४३२००० वर्ष का कलियुग
८६४००० वर्ष का द्वापर
१२९६००० वर्ष का त्रेता
१७२८००० वर्ष का सतयुग

दिव्यवर्ष = एक दिव्यवर्ष होता है (मनुष्यों के वर्ष ४३२० गुणा करने से)
एक दिव्यवर्ष होगा तब मनुष्यों के ४३२० वर्ष होंगे ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभेद दर्शी - ज्ञानी

श्लोक यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

अर्थ, जो साधक सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है और समस्त भूतों में भी आत्मा को ही देखता है, वह इस सर्वात्मदर्शन के कारण ही किसी से घृणा नहीं करता॥ ६ म

श्लोक = यस्मिन सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोह: कः शोक एकत्व मनु पश्यतः॥

अर्थ = जिस समय ज्ञानी पुरुष के लिये सब भूत आत्मा ही होगये हैं उस समय एकत्व देखने वाले उस विद्वान् को क्या शोह और क्या मोह हो सकता है?

जो परिवाट मुमुक्षु अव्यक्त से लेकर स्थाणु पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में ही देखता है अर्थात उन्हें आत्मा से पृथक नहीं देखता तथा उन भूतों के आत्मा को भी अपना ही आत्मा जानता है, यानी यह सम्पूर्ण है कि जिस प्रकार मैं इस देह के कार्य लिंग और करण (इन्द्रिय) संघात का आत्मा और इस की समस्त प्रतीतियों का साक्षी चेतायिता, केवल और निर्गुण हूं, उसी प्रकार अपने इसी रूप से अव्यक्त से लेकर स्थाणु पर्यन्त सम्पूर्ण भूतों का आत्मा भी मैं ही हूं। इसी प्रकार जो सब भूतों में अपने निर्विशेष आत्म स्वरूप को ही देखता है, वह उस आत्म दर्शन के कारण ही किसी से जुगुप्सा यानी किसी से घृणा नहीं करता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(यानें सभी प्रकार की घृणा अपने से भिन्न किसी दूषित पदार्थ को देखने वाले पुरुष को ही होती है। जो निरन्तर अपने अत्यन्त विशुद्ध आत्म स्वरूप को ही देखने वाला है उसकी दृष्टि में घृणा का निमित्त भूत कोई अन्य पदार्थ ही नहीं है यतः जगत् स्वतः मृत हो जाती है, इसलिये वह किसी से — घृणा नहीं करता।

(ब्रह्म जानने का उपाय)

(नाहमस्मीति) मैंने ब्रह्म को भले प्रकार जान लिया है। ऐसा मैं नहीं मानता हूँ। और मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूं ऐसा भी नहीं मानता हूं। क्योंकि जानना और न जानना धर्म बुद्धि का है, जब ब्रह्म साक्षात् होता है तब बुद्धि का अभाव होता है। और बुद्धि के अभाव होने से मैं ऐसे कह सकता हूं कि मैं ब्रह्म को जानता हूं या नहीं जानता हूं। जब शास्त्र प्रमाण करके गुरु के उपदेश करके और अपने अनुभव करके सम्पूर्ण जगत ब्रह्म ही स्वरूप है और जानने योग्य जो ब्रह्म है वह मैं ही हूं तब मैं ऐसे कह सकता हूं कि मैं ब्रह्म को जानता हूं मानो जानता हूं जो एक रूप से सर्व गुणातीत होकर व्याप्त है उसके जानने और न जानने बनता नहीं।

(मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूं ऐसा भी नहीं कह सकता, और ब्रह्म को मैं जानता हूं ऐसा भी नहीं कह सकता क्योंकि वह ज्ञात तथा अज्ञात से भिन्न है। अवाच्य होकर चुप रहना यथार्थ उत्तर है।

नोट = सार वस्तु यह है कि यदि शंकर समझता हो कि मैं ब्रह्म को जानता हूं तो ठीक नहीं है। कि ज्ञाता चैतन्य होता है और ज्ञेय जड़ तो चैतन्य आत्मा बना और ब्रह्म को जड़ बनाया। सो श्रुति स्मृति विरुद्ध है। यदि ऐसा कहे कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता हूं तो भी ठीक नहीं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदान्त जब ब्रह्म अज्ञात हो, तब कह सकता है, कि मैं ब्रह्म को
नहीं जान सकता हूं, ब्रह्म तो सदा पूर्ण एक रस सर्वत्र स्थित है
वह अज्ञात कैसे हो सकता है। जो अपना रूप है उस विषे
जानना और न जानना दोनों नहीं हो सकते हैं॥

प्रश्न:- जब ब्रह्म किसी अविद्या के द्वारा नहीं जाना जाता है,
तो उसका भान कैसे होता है।

उत्तर:- प्रति बोधेति। बोध पद का अर्थ बुद्धि की वृत्ति है, जो
चेतन बुद्धि की सब वृत्तियों में प्रति बिम्बित होके उन्हें
वृत्तियों का साक्षी रूप से स्थित है, वही ब्रह्म है॥
॥विदितं मतं॥ यहां - ऐसा भान होता है। अब आत्मज्ञान के फल को
कहते हैं। अमृतत्वं॥ आत्मा के ज्ञान से पुरुष अमृतत्वं को अर्थात्
मोक्ष को प्राप्त होकर जन्म मरण से छूट जाता है॥ आत्मना॥
और समाहित मन करके अर्थात् एकाग्रचित्त करके॥ वीर्य॥
आचार्य के उपदेश की हुई ब्रह्म विद्या की सामर्थ्य को प्राप्त होता है
॥विद्यया॥ और आत्मज्ञान रूपी ब्रह्म विद्या करके॥ अमृतं॥ मोक्ष
को प्राप्त होता है। आत्मा नित्य कंठ में स्थित मणि की तरह प्राप्त है
जैसे किसी के कंठ में मणि जटित भूषण पड़ा था, उसको यह भ्रम
होगया, कि मेरा भूषण खो गया है, इधर उधर खोजने लगा, तब किसी
ने कहा कि हे भाई! क्या खोजते हो? उसने कहा मैं अपनी मणि को खोजता हूं।
तब उसने कहा कि यह मणि तो तुम्हारे कंठ में ही स्थित है। तब उसने यह
सुनि-श्चय किया, कि मणि मेरे गले में थी और कहा के खोई हुई मणी
मिल गई, इसी प्रकार ब्रह्म सदा प्राप्त है॥ वह अपना आत्मा है और
कोई वस्तु नहीं है, मूढ़ पुरुष ब्रह्म को खोजता है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिस काल आचार्य शिष्यको उपदेश करता है कि तत्त्वमसि तब वह शिष्य गरजकर कहता है॥ अहं ब्रह्मास्मि॥ मैं ब्रह्मरूप हूँ। फिर ऐसा कहकर अवाच्य होजाता है. क्योंकि ज्ञान होते ही वह अखण्ड आनन्दको प्राप्त होजाता है, वहां सेमन लटलाने लगे और बिना मनके वाक इंद्रिय कुछ कह नहीं सकती है॥

॥ अभिमान रहित होनेपर ॥ अमृतः॥ मुक्त होजाता है॥

एकसमय, अग्नि, वायु, और इन्द्र देवता असुरों को पराजय करके किसी एक पहाड़पर बैठकर अभिमान सहित परस्पर गप्प मारते थे और कहते थे कि तमलोग कैसे लड़े और शत्रुओंको मारा और भगाया. इस अहंकारको परमात्मा न सह सका। तब देवताओंका अभिमान दूर करने के लिये कल्याण रूप यक्ष का रूप धारण करजहांपर सब बैठे थे, समीप आकर दिखलाई दिया। यक्ष ने सबसे पूछा कि तुम कौन हो अग्नि ने अभिमान सेकहा मैं अग्नि देवता हूं. तेरे में क्या सामर्थ्य है मैं सारे संसार को पलभर में भस्म करदेता हूं। यक्ष ने एक तिनका उठाकर कहा कि इसे भस्म करो अग्नि देवता ने सबजोर लगाया पर कुछ नहीं करसका। इसीप्रकार वायु देवता तिनके को उड़ा न सका. उसके तेजसे भी नहीं उड़ा. तो अभिमान से इन्द्र के पास गये इन्द्र आया तब यक्ष अन्तर्धान होगया। इन्द्र देवता अभिमान से रहित होकर उसी स्थानमें नम्रता के साथ खड़ा रहा जहांपर यक्ष स्थित था. और उस यक्ष का ध्यान करने लगा. इतनेमें वह क्या देखता है कि यक्ष के बदले ब्रह्मविद्या स्त्री रूप धारण किये हुए उपचाय स्थित है. वही बड़ी स्वरूप वती है। सर्व के आभूषणोंसे युक्त है. उससे इन्द्रदेव हाथ जोड़कर कहता है कि हे मातः जो यक्ष सन्मुख स्थित था और मेरे आगे से अन्तर्धान होगया वह कौनथा यह वचन सुनकर उमा कहती है कि इन्द्र - अकाल वस्तु यही चेष्टा रहित नो ब्रह्म है. वही यक्ष के रूपको धारण करके इसी जगह में स्थित था. तुम्हारी विजयका कारण भी था.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह जो तुम्हारा विजय हुआ था, सो ब्रह्म का विजय था तुम वृथा ही अभिमान करते हो कि हमने विजय किया है! तुम्हारे अभिमान को दूर करने के लिये ब्रह्म ने यक्ष का रूप धारण किया था। तब इन्द्र ने ऐसा सुनकर कहा. कि हे मातः! तू सत्य कहती है आज तुम्हारे प्रसाद से मैंने ब्रह्म को जाना॥ तात्पर्य. ब्रह्म प्राप्ति वाला अभिमान रहित होना चाहिये।

तात्पर्य:- इन्द्र करके आगत जो ब्रह्म है. उसका यह नद्यमाण आदेश. है. अर्थात् उपमा रहित ब्रह्म का उपमा करके उपदेश है यह उपदेश कर्ता भी मुमुक्षु प्रति है क्योंकि उनका ब्रह्म सदैव काल प्राप्ति नहीं रहता है, कभी कभी बिजली की तरह चमक कर तिरोधान हो जाता है कारण यह है कि उनको पूरा पूरा वैराग्य नहीं है ऐसी इन्द्र को बिजली के समान दिखाई देकर ब्रह्म तिरोधान हो गया. क्योंकि इन्द्र को शुभ क्रिया का एक शुभ कामना के वश होने से तीव्र वैराग्य नहीं था यही पर मतलब यह है जो मुमुक्षु अहंकार सहित है उसको ब्रह्म की नित्य प्राप्ति होती है जैसे अहंकार सहित होकर अग्नि इन्द्र वायु इन्द्र को ब्रह्म नहीं प्राप्त हुआ. जो मुमुक्षु अहंकार रहित है और वैराग्य सम्पन्न है उसको ब्रह्म की प्राप्ति उपेन्द्र ने भी मिलाई परन्तु उसको बिजली के समान दिखाई देकर तिरोधान हो जाता है जैसे इन्द्र को हुआ था।

नोट- जब इन्द्र यक्ष के पास चलता है बहुत नम्रता से चलता और जब पक्षी अन्तर्धान हो गया तब उसको बड़ी ग्लानि हुई वही उसका कारण वैराग्य था।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सर्वोपाधि विनिर्मुक्तं - सच्चिदानन्द मद्वयम् ।
भावयात्मानमात्मस्थं न भूयः कल्पसे ऽध्वनि ॥

अर्थ- समस्त उपाधियोंसे रहित अद्वितीय सच्चिदानन्द स्वरूप अपने अन्तः करणमें स्थित आत्माका चिन्तन करते रहो इससे तुम फिर संसार-चक्र में नहीं पड़ोगे ।

जैसे गौ अपने गलेमें पड़ी हुई सांकल रटने अथवा गिनने की ओर कुछ ध्यान नहीं देती । इसी प्रकार आत्मज्ञ की डोरीमें पिरोया हुआ यह शरीर है अथवा जगत जिसकी चिन्तवृत्ति आनन्द रूप ब्रह्ममें लीन हो गई है वह ब्रह्म बेत्ता फिर इसकी ओर नहीं देखता है । (उपाधि)

वैराग्य का फल बोध है, बोध का फल विषयों से उदासीनता तथा उपरति का फल यही है कि आत्मानन्द के अनुभवसे चित्त शान्त राग द्वेष रहित होजाय ॥

श्लोक- वासनानुदयो भोग्ये - वैराग्यस्य परोऽवधिः ।
अहंभावादभावो बोधस्य परमोऽवधिः ॥
लीनवृत्तेरनुत्पत्तिर्मर्यादा परतस्तु सा

अर्थ- भोग्य वस्तुओं में वासनाओंका उदय न होना वैराग्य की परम अवधि है, चित्तमें अहंकार का सर्वथा उदय न होना बोध की चरम सीमा है, और लीन हुई वृत्तियों का पुनः उत्पन्न न होना परम उपरामता की सीमा है ।

निरन्तर अखण्डाकार वृत्तिसे स्थित रहने के कारण जिसकी बुद्धि बाह्य विषयोंमेंसे निकल गई है, और जो निद्रालु अथवा बालक के समान दूसरे के निवेदन किये हुए ही भोग्य पदार्थों का सेवन करता है तथा जो विषयों में बुद्धि जाने पर जो इस संसार को स्वप्न-प्रपंच के समान मिथ्या देखता है वह अनन्त पुण्यों के फलका भोगने वाला कोई ज्ञानी कृष्ण इस पृथ्वी तलमें धन्यवाद और सत्कार के योग्य है = वन्दनीय है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक - यस्य स्थिता भवेत्प्रज्ञा, यस्यानन्दो निरन्तरः।
प्रपञ्चो विस्मृत प्रायः स जीवन्मुक्त इष्यते॥

अर्थ. जिसकी प्रज्ञा स्थिर है - जो निरन्तर आत्मानन्दका अनुभव करता है, और प्रपंचो को भूलता रहता है वह पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है॥

श्लोक = गुण दोष विशेषेऽस्मिन्स्वभावेन विलक्षणे।
सर्वत्र समदर्शित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥

अर्थ = अपने आत्म स्वरूप से सर्वथा पृथक् इस गुण दोषमय संसार में सर्वत्र समदर्शी होना जीवन मुक्त का लक्षण है॥

श्लोक - इष्टानिष्टार्थसम्प्राप्तौ समदर्शितयात्मनि।
उभयत्राविकारित्वं जीवन्मुक्तस्य लक्षणम्॥

अर्थ - इष्ट अथवा अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति में समानभाव रखने के कारण दोनोंही अवस्थाओं में चित्तमें कोई भी विकार न होना जीवन्मुक्त पुरुषका लक्षण है।

जो अपनी तत्त्वावगाहिनी बुद्धि से आत्मा तथा ब्रह्म और ब्रह्म तथा संसार में कोई भेद नहीं रखता (देखता) वह पुरुष जीवन मुक्त माना जाता है।

(ब्रह्म तत्त्व जान लेने पर विद्वान को पूर्ववत संसार की आस्था नहीं रहती और यदि फिर भी संसार की आस्था बनी रही तो समझना चाहिये कि वह वस्तुतः संसारी ही है उसे ब्रह्म तत्त्वका ज्ञान नहीं हुआ

(यदि कहो कि पूर्ववासनाकी प्रबलता से फिर भी इसकी संसार में प्रवृत्ति रह सकती है तो ऐसी बात नहीं है क्योंकि ब्रह्म के एकत्व ज्ञान होने (विषयका बाध होजाने के कारण) इसकी वासना मन्द होजाती है, अर्थात प्रवृत्ति-प्रयोजिका प्रबल वासना नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक अत्यन्त कामुकस्यापि वृत्तिः कुंठीति मातरि।
तथैव ब्रह्मणि ज्ञाते पूर्णानन्दे मनीषिणः॥

अर्थ- जिस प्रकार अत्यन्त कामी पुरुष की भी कामवृत्ति माता को देखकर कुंठित हो जाती है। उसी प्रकार पूर्णानन्द स्वरूप ब्रह्म को जान लेने पर विद्वान की संसार में प्रवृत्ति नहीं होती॥

श्लोक अहं ब्रह्मेति विज्ञानात्कल्प कोटिशतार्जितम्।
संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्न कर्मवत्॥

अर्थ- जाग जाने पर जैसे स्वप्नावस्था के कर्म लीन हो जाते हैं वैसे ही 'मैं ब्रह्म हूं' - ऐसा ज्ञान होते ही करोड़ कल्पों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं॥ विद्वान निष्कर्म एवं निर्मल हो जाता है।

(काशी की महिमा)

यत्राम्बु निंद्य मृतमेव मर्त्यजाश्च सुरेश्वरा।
चिन्तामणिज्य पाषाणः सा काशी केन मीयते॥

अर्थ- जिस काशी का जल अमृत की निन्दा करता है और जहां के अन्त्यज देवताओं की निन्दा करते हैं और काशी के पाषाण चिन्तामणि की निन्दा करते हैं ऐसी काशी की उपमा के तुल्य इस लोक में कौन सा महात्मा है।

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद्योजनानां शतैरपि॥
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

अर्थ- कीटाः पतङ्गाः पशवश्च वृक्षाः जले स्थले ये विचरन्ति जीवाः
मण्डूक मत्स्याः कृमयोऽपि काश्यां त्यक्त्वा शरीरं शिवमाप्नुवन्ति॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काम क्रोधौ लोभ मोहौ - देहे तिष्ठति तस्करः ।
हरंति ज्ञान रत्नानि - तस्माज्जागृहि जागृहि ॥
अहंकार सुतं वित्तं भ्रातरं मोह मन्दिरम् ।
आशा पत्नीं त्यजेद्यावत्तावन्मुक्तो न संशयः ॥
देवता प्रतिमां दृष्ट्वा यति दृष्ट्वा च दंडिनम् ।
प्राणि घातम् कुर्वाणो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥
द्वे रूपे वासुदेवस्य - चलंचाचल मेवच ।
चलं सन्यासिनो रूपं अचलं प्रतिमादिकम् ॥
यतिर्यस्य गृहे भुंक्ते तत्र भुंक्ते स्वयं हरिः ।
हरिर्यस्य गृहे भुंक्ते तत्र भुंक्ते जगत्त्रयम् ॥
यति हस्ते जलं दद्यात् भिक्षां दद्यात् पुनर्जलम् ।
तृप्तिदा धेनुना तुल्यं तज्जलं नागदो यथा ॥
ब्रह्मचारी तटस्थश्च वाण प्रस्थो शतानिच ।
ब्राह्मणो णांतु कोवस्तु यति रेको विशिष्यते ॥ + कोऽप्यस्तु

संन्यास धारणं कार्यं - विप्रस्य मुक्ति हेतवे ।
यो विप्रो धारयेद् दंडं - सवै नारायणः स्वयम् ॥
कौपीनं गरिकं वस्त्रं प्रयत्नेन परिधार्यते ।
दण्ड ग्रहण मात्रेण नरो नारायणो भवेत् ॥
यति दर्शन मात्रेण सर्व पापैः प्रमुच्यते ।
तीर्थ व्रतं तपोदानं सर्वयज्ञ फलं लभेत् ॥
धन वृद्धा न्यो वृद्धा विद्या वृद्धास्तथैवच ।
ते सर्वे ज्ञान वृद्धस्य किंकराः शिष्य किंकराः ॥
श्रवणं तु गुरोः पूर्वं मननं तदनंतरम् ।
निदिध्यासन मित्येतत्पूर्णं बोधस्य कारणम् ॥
तुषेण बद्धो व्रीहिः स्यात्तुषाभावेन तण्डुलः ।
एवं हि बद्धस्तथा जीव कर्म नाशे सदाशिवः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक: गच्छन्तिष्ठन्नुपविश उच्छयानोवा ऽन्यथापिवा ॥
यथेच्छया वसेद्विद्वानात्मारामः सदामुनेः ॥५२८॥

अर्थ- ब्रह्मज्ञानी की सर्वकाल समाधिस्थिति को वर्णन करते हैं। गच्छन्निति- जो पुरुष आत्मा में तृप्त हुआ है और मननशील है ब्रह्मज्ञानी है— सीधी में जाता हुआ अथवा जनशून्य वनमें पद्मादि आसनोंमें बैठा हुआ. पृथ्वीमें शयन करता हुआ. अथवा अन्य प्रकार से मधुआदि विविध देशोंमें गमन करता हुआ. समाधिमें स्थित हुआ. वा सूखे में बैठा हुआ. महलोंमें सोता हुआ. सर्वकाल में अपनी इच्छानुसार विषयोंके परतंत्र कभी नहीं होवे, ब्रह्मज्ञानी को निरंकुश होनेसे उसकी चेष्टा को नियमन नहीं है।

श्लोक व ५२९ न देश कालासनादियमादि लक्ष्याद्यपेक्षा ऽप्रतिबद्ध वृत्तेः ॥
संसिद्ध तत्त्वस्य महात्मनोस्ति स्वेच्छे नियमाद्यवस्था ॥

अर्थ= विद्वान की चेष्टा का नियम न होवे तो भी स्वतन्त्र देशादि की अपेक्षा होगी. इसकी शंका का समाधान करते हैं न इति ॥ प्रतिबन्धरहित जिसकी वृत्ति है. सम्यक आत्माके स्वरूपका जिसने निश्चय कालिय है. ॥ क्लेशरहित जिसका मन है ऐसे ब्रह्मज्ञानीको यमआदि देश चूर्णमाली आदि काल पद्मादि आसन उत्तराहि यम नियमादि योगसाधन स्थूल सूक्ष्मादि लक्ष्य में धारणादि की अपेक्षा— नहीं है ब्रह्मात्मा के ज्ञान में देशकालादि के नियमादि की व्यवस्था क्या होती है? किन्तु इनकी तो उसको

श्लोक ५३० निर्धनोपि सदा तुष्टोऽप्य सहायो महाबलः ॥
नित्य तृप्तोऽप्य भुञ्जानोऽप्यसमः सम दर्शनः ॥

अर्थ= ब्रह्मज्ञानी धनसे रहित भी आत्मधन से सदा सन्तोषवाला होता है सजातीय सहायक न होनेपर भी विवेक धैर्य दम बलयुक्त होता है. पूर्ण भोग में अतृप्त होनेपर भी आत्मानंद के अनुभवसे पूर्ण रहता है. उसके समान दूसरा नहीं है उससे रहित और शत्रु मित्र में समदृष्टि करता है. ऐसा चित्र योग्यवान ब्रह्मज्ञानी विलक्षण स्वभाव वाला है॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक, अशरीरं सदा सन्तमिमं ब्रह्मविदं क्वचित् ।।
प्रश्नु प्रियाप्रिये न स्पृशतस्तथैव च शुभाशुभे ।।

अर्थ = (अशरीरका विवरण करते हैं) ब्रह्मको अपना आत्मा जाननेवाले शरीरके अभिमानसे रहित होकर सर्वकाल विद्यमान इस ब्रह्मज्ञानीको कहीं भी कभी भी किसी कालमें भी पुण्य पाप नहीं छूते। सुखदुख हर्षविषाद को नहीं उदय करते हैं। और इसको अहंकार में उसके सम्बंधवाले भी नहीं होते हैं ।। सुखदुख समझ लेते हैं।।

(ब्रह्मकी प्राप्ति होनेपर) क्या होता है जैसे = विवेकचूडामणि पृष्ठ २१० श्लोकांक

श्लोक, अत्यन्तकामुकस्यापि वृत्तिः कुण्ठति मातरि ।
तथैव ब्रह्मणिज्ञाते पुंसिनन्दे मनीषिणः ।।

अर्थ = जिस प्रकार अत्यन्त कामी पुरुषकी भी काम वृत्ति माताको देखकर कुंठित होजाती है, उसीप्रकार पूर्णानंद स्वरूप ब्रह्मको जाननेवाले विद्वानकी संसार में प्रवृत्ति नहीं होती ।।

श्लोक, क्वचिन्मूढो विद्वान् क्वचिदपि महाराज विभवः
क्वचिद्भ्रान्तः सौम्यः क्वचिदजगराचारकलितः ।
क्वचित्पात्रीभूतः क्वचिदवमतः काप्यविदित-
श्चरत्येवं प्राज्ञः सतत परमानन्द सुखितः ।।२७

अर्थ ब्रह्मवेत्ता महापुरुष कहीं मूढ, कहीं विद्वान और कहीं राजामहाराजा जैसे ठाट-बाट से युक्त दिखाई देता है। वही कहीं भ्रान्त, कहीं शांत और कहीं अजगर के समान निश्चल भाव से पड़ा दीख पड़ता है। सदैव निरन्तर परमानन्द में मग्न ज्ञानी विद्वान, कहीं सम्मानित, कहीं अपमानित और कहीं अज्ञात रहकर अलक्षित गतिसे स्वतंत्र विचरता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भगवद्धामका उत्कर्ष

भगवान नारायणका परमधाम ब्रह्मलोकसे भी परे एवं सर्वोत्कृष्ट है। भगवान विष्णुका वह धाम सर्व तेजोमय एवं अत्यन्त कल्याण दायक है। उसका दर्शन देवताओं को भी दुर्लभ है दानवोंका तो उसमें प्रवेश भी नहीं है। सूर्य तथा अग्निके प्रकाशकी वहां पहुंच नहीं है. वह अपने ही तेज से आलोकित है. मुक्तात्माओं के ईश्वर तथा सबके मूल कारण स्वयं भगवान अपनी दिव्य कांतिसे वहांके सारे जीवोंको दीप्तिमान करते हुए वहां विराजते हैं। वहां जन्म मृत्यु जरा व्याधि की भी गति नहीं है, महर्षियों की तो बात ही क्या है। केवल सर्व त्यागी मुक्तजन वहां पहुंच पाते हैं। चन्द्र सूर्य एवं ताराओं का प्रकाश भी वहां जाकर फीका पड़ जाता है। परमस्वतंत्र अच्युत स्वयं भगवान श्रीहरि वहां अपनी अलौकिक शोभा का विस्तार करते हैं। शुभ कर्मों से जिनका अन्तःकरण शुद्ध होगया है, वे ऐसे परम तपस्वी लोभ मोह से रहित, सर्व त्यागी योग सिद्ध महात्मा ही अपने द्वारा नहीं भगवान नारायण का दर्शन पाते हैं। और वहां जाकर फिर इस संसार में वापस नहीं आते। भगवान का वह दिव्य धाम सनातन, अविनाशी एवं अमृत मय है।

श्लोक: यत्र यत्र मृतो ज्ञानी परमाक्षर चिन्तया।
पर ब्रह्मणि लीयते न तस्योत्क्रांति रिष्यते॥ महाभारत वनपर्व

अर्थ: परम अक्षर को जानने वाला ज्ञानी जहां २ मरता है वहां वहां सदा परब्रह्म में लय होता है अर्थात उत्क्रांति नहीं होती अर्थात वह कहीं नहीं जाता। ॐ

श्लोक: आत्म कल्पेन शास्त्रेण छिन्नं चित्त मिदं यदा
सर्व सर्वगतं शान्तं ब्रह्म सम्पद्यते तदा॥

अर्थ: अनंत कल्प रूपी शास्त्रों से जिस समय चित्त नष्ट हुआ उस समय सर्व व्यापक शान्त ब्रह्म को प्राप्त होता है॥

महाभारत शान्तिपर्व अध्याय १५२

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा की नित्यता

दोहा · परमानंद समान सुख ; नहीं अहे कुछ आन ।
प्राप्त करहिं तातें परम, कहीं पुरुषार्थ सुजान ।।

अनात्मा (पंचकोष की अनित्यता -

दोहा · शशा-शृंग बन्ध्या सुवन मारवाड़ जिमि तोय ।
गगन बान तिहुं काल तिमि · जगत सत्य नहिं होय ।।
यथा स्वप्न की बात सब जागृत में न दिखात ।
जागृत ही में स्वप्न सी, जागृत बीती बात ।।
अछत देह का दृश्य सब नाशा देह के पात ।
ज्ञान भये पर जगत यह · तथा झूठ दरशात ।।

(वैराग)

दोहा सो मूरख सुख हेतु जो करत तीज यही आस ।
यथा तृषित नर ओस कण · चाटि बुझावे प्यास ।।
कस्तूरी मृग नाभि महं · ढूढत फिरे तमाम ।
तिमि ढूंढत जग अज्ञ नर पावत नहिं विश्राम ।।

(संसार की असारता)

दोहा · जाको देखत ललित तुम, सो तेमर का फूल ।
बड़ो ने दरसे सेड्या · आखिर निकला धूल ।।

(शरीर का दोष)

दोहा · चंचलता अति अल्प बल · अल्प बालस्य दुःख ।
यौवन-ज्वर - मद विविध दुख, पुनः भयो मति भ्रष्ट ।।

अर्थ · ३ बाल्यावस्थामें चंचलता अल्प बल अज्ञानी होने के कारण ४ थे बाल्यावस्था अल्पता दुखदायी है । तथा युवा अवस्थामें (कामाग्नि प्रबलता) आगे कहे तीन प्रकार के दोष (दोहे - दोनों के और भी ति) में बुद्धि ठिकाने नहीं रहती । वृद्धावस्थामें इन्द्रियां शिथिल होजाती हैं और मोह शोक बढ़ जाता है । अनेक कष्टों से अधिक अपमान सहना पड़ता है ।

दोहा · शिथिल भई सब इंद्रियां · मोह शोक बलवान ।
बहुत कष्ट बुढ़ापने · दीनहुते अपमान ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(द्रव्य की आसक्ति)

उत्पत्ति जाकी कष्ट से शोक होत जोत मृत्यु।
वृक्षा में जुव काल तिहु होति चंचलाकृत्यु॥

(सुरक्षा की आसक्ता)

दोहा इन्द्रासन हू जिवहु अति व्यर्थ अमर कहलात।
विधिके वासो एकमें चौदह इन्द्र नशात॥

(भोग्यता होती है)

दोहा समसे कलह ऊंचस्थ से डाह निचस्थ मान।
क्षीण पुण्य पुनि जन्मना मृत्युलोक में आन॥

अर्थ - स्वर्ग में ऊंचा दर्जे वालों से झगड़ा, तथा ऊंचे वालों से डाह होती है और नीचे वालों से अभिमान होता है। स्वर्ग में एक अवगुण यह भी है, कि पुण्य के क्षीण होने पर मृत्यु लोक में जन्म लेना पड़ता है। भगवान ने कहा है

क्षीणे पुण्ये मर्त्य लोके विशन्ति।

तेतं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मृत्य लोके विशन्ति॥

दोहा विश्व बनावन तारविधि काल पाए मिटजात।
छिति कुबेर रवि चन्द्रमुत कौन विरद की बात॥

इसका एक दृष्टान्त रूप में मनुष्य मूर्ति का अध्याय में लिखा है।

छः मास जो उत्तरायण में रहते हैं वह देवताओं का एक दिन और छः मास दक्षिणायन में रहते हैं उसी को रात्रि कहते हैं इस हिसाब से मनुष्यों का एक वर्ष देवताओं के एक दिन रात के बराबर होता है जब देवताओं के ३० दिन व्यतीत हो जाते हैं तो मनुष्यों का ३० वर्ष होते हैं। तथा देवताओं के १२ महीना होते हैं तब मनुष्यों के ३६० बरस होते हैं। देवताओं के वर्ष सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्षों का सतयुग होता है उसमें मनुष्यों के सत्रह लाख अट्ठाईस हजार वर्ष होते हैं (१७२८०००) देवताओं का (३६००) वर्षों का त्रेता है। वह मनुष्यों के १२९६००० के बराबर होता है तथा (२४००) वर्षों का द्वापर (उसमें मनुष्यों के (८६४०००) वर्ष होते हैं) एक हजार (१२००) वर्षों का कलियुग वह मनुष्यों के (४३२०००) वर्षों के बराबर होता है। चारों युगों की संख्या देवताओं की (१२०००) चारों युगों की मनुष्यों की संख्या (४३२००००) वर्ष की हुई। इसी बारह हजार वर्षों की देवताओं का एक युग होता है यह देव युग, मनुष्यों का महायुग कहलाता है। और इसी युग के इकहत्तर युगों का एक मन्वन्तर होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोहा- पालन करता विष्णु है, विधि लोकर यह सृष्टि।
धारण में धरणी भया, मेघ रूप है वृष्टि॥
अमृतमय निज राशि से, होकर शशि नभ माहिं।
औषधि सब पोषण करें, मुख से सभी नशाहिं॥
काल रूप में कल्प है, लव निमेष युग वर्ष।
जल में रस अरु भूमि में, गन्ध वायु में पर्श॥
उष्ण तेज में शब्द नभ, वेदन में अहं भाव।
प्राणिन में मुख्य प्राण है, लोक सकल व्यवहार॥
विद्युत रवि शशि तारका, अग्नि आदि ये सर्व।
परकाशत मम रूप से, उत्तम मध्यम सर्व॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया, न बहुना श्रुतेन।
यमेष वृणुते तेन लभ्यस्तनू स्वाम्॥

अर्थ/यह आत्मा न तो बहुत पढ़नेसे प्राप्त होती है, न बहुत सुननेसे ही प्राप्त होती है जिसपर यह आत्मा प्रसन्न होती है उसी अधिकारीके द्वारा अपने स्वरूपको प्राप्त कराती है। भावार्थ यह है कि वेदादि शास्त्रके अध्ययनसे तथा निष्काम कर्म एवं उपासनाके द्वारा जब बुद्धि प्रबल होजाती है और श्रवण मनन तथा निदिध्यासनके द्वारा जब अज्ञान रूपी आवरण दूर हो जाता है, तो उस अधिकारीके हृदयमें आत्मदेव स्वयं प्रकाशित होते हैं। शास्त्र अध्ययन शुद्ध बुद्धि श्रवणादि ये केवल आवरणभंग करनेके हेतु होते हैं आत्माको प्राप्त करनेमें नहीं। आत्मा तो स्वयं प्रकाश स्वरूप है उसको कौन प्रकाश कर सकता है। जिसके हृदयमें अज्ञानरूपी आवरण है उसके लिये प्रकाशित होनेपर भी प्रतीत नहीं होगा। अतः साधन सम्पन्न शुद्धान्तःकरण वाले अधिकारी पुरुष के ऊपर ही अपने सच्चे ज्ञान स्वरूप स्वरूप साक्षात् करानेकी कृपा होती है। उसके दुःखरूप अज्ञान तथा अज्ञानजनित प्रपञ्चकी अत्यन्त निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्ति होती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

।ओमित्येदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।
भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोंकार एव ॥
यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म प्रणवः सर्व-वेदेषु ॥

अर्थ- अर्थात ॐ जो यह एक अक्षर है. सो यह सब जगत है. उस ॐकार की आत्मा व्याख्या करता है। भूत. भविष्य और वर्तमान जो यह तीन काल है. सो सब ओंका ही है. और जो इन तीन काल से परे अर्थात जितने ये तीन काल के लिप्त रहित ब्रह्म भी ओंकार ही है, ॐ जो यह एक अक्षर है. सो ब्रह्म है. सब वेदों में ही ओंकार है

प्रश्न- प्रणव (ॐकार) महावाक्य किस प्रकार है.

उत्तर- वर्णों के समुदाय (समूह) को शब्द और शब्दों के समुदाय को वाक्य कहते हैं इस नियम से प्रणव में अकार. उकार मकार और अर्ध मात्रा अर्थात- अ भा उ मा से चार मात्रा (पाद अंश या चरण) है. ॐ इस प्रकार से-

'अकार उच्यते विष्णु उकार उच्यते पितामहः।
मकार उच्यते रुद्रो. तत्परे ज्योतिरोमिति ॥

अर्थात- अकार. विष्णु. उकार ब्रह्मा. तथा मकार रुद्र कहलाता है ॐ इससे परे जो अर्धमात्रा है वह ज्योति स्वरूपी कहलाती है. इस प्रमाण से ओंकार में- विष्णु. ब्रह्मा. इत्यादि शब्द हैं. अतः शब्दों का समूह होने से ॐ का महावाक्य है प्रथम के उपाधिरूप तीन वर्णों को छोड़कर चौथे चरण (साक्षी) में लक्षणा चिन्तन करने से. अपने स्वरूप का अपरोक्ष ज्ञान रूप फल होता है. क्योंकि वह चौथा चरण साक्षी होने से अपना शुद्ध स्वरूप ही है।

प्रश्न- शालिग्राम. इत्यादि प्रतीकों में. तथा प्रणव रूपी. प्रतीक में केवल इतना ही अन्तर है कि शालिग्राम इत्यादि प्रतीकों में शास्त्र अथवा आप्त पुरुषों के वाक्यों पर विश्वास करके विष्णु आदि का परोक्ष ज्ञान होता है. अतः शालिग्राम आदि भावनागम्य हैं और प्रणव में प्रणव में भावना की आवश्यकता नहीं है. केवल चिन्तन की आवश्यकता है. और इससे चिन्तन का फल परोक्ष नहीं होता कि नु अपरोक्ष होता है. क्योंकि प्रणव महावाक्य है. महावाक्य का ऐसा स्वभाव ही है. कि उसके अर्थ के चिन्तन मात्र से. वह वस्तु का- अपरोक्ष (साक्षात) कराता है। अहो

ज्ञानीका अनुभव } ज्ञाता. ज्ञान न ज्ञेय कछु. ध्याता. ध्यान न ध्येय | सर्वहीन अरु सर्वचिन्त तत्त्व कैवल्य है॥
कर्ता भोक्ता कर्म नहिं. द्रष्टा दर्शन दृश्य ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आत्म मस्ती अगर चाहे - अनात्म मस्ती मिटाता जा ।
तत्व अपनी अगर चाहे - तो भेद अपना छिपाता जा ॥
न रह वर्ते न मर भूखा - न जा मंदिर न कर पूजा ।
कुमिक्षा फोड़ दे भंडा - सदा के शौक पीता जा ॥
छोड़ माला तोड़ तागा - फेंक तो बेंडाल पानी में ।
पंडित बन के क्या रत्ना - धर्म मंडित को बहाता जा ॥
त्याग का प्रेम का झाड़ - सफा का दिल के सेहरा को ।
दैत की भस्म भूति हो - स्व जाति पर उड़ाता जा ॥
कहेवो अंक मस्ताना - आत्म दी आप तो जाना
आत्मा है - महात्मों का - इसी को याद करता जा ॥

वर्णाश्रमाभिमानेन - मुक्ति दासो भवेन्नरः ।
वर्णाश्रमी विहीनश्च - भारते मुक्ति मूर्धनी ॥

लोकान वर्तनं त्यक्त्वा - त्यक्त्वा देहानु वर्तनः ।
शास्त्रानु वर्तनं त्यक्त्वा - स्वाध्यासापनयं कुरु ॥
लोक वासनया जन्तो - शास्त्र वासनयापिच -
देह वासनया ज्ञानं - यथा वन्तैव जायते ॥
अभिमानं सुवर्णानं - गौरवं रौरवं तथा
प्रतिष्ठा शूकरी विष्ठा - तीर्त्वा त्यक्त्वा सुखी भवेत

लोकानु वर्तनं त्यक्त्वा - त्यक्त्वा देहानु वर्तनम् ॥ विवेक चूड़ामणि सार्थ
शास्त्रानु वर्तनं त्यक्त्वा - स्वाध्यासापनयं कुरु ॥ २८३ श्लोक २८० से २८१
लोक वासनया जन्तोः शास्त्र वासनयापिच ॥
देह वासनया ज्ञानं - यथा यथा वन्तैव जायते ॥

संसार कारागृह मोक्षमिच्छो - रयोमयं पाद निबंध शृंखलम्
वदन्ति तज्ज्ञा यदवासनाख्यं - यो सादृढ़ः समुपैति मुक्तिम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

२७- लोकवासना, देववासना और शास्त्रवासना इन तीनोंको छोड़कर आत्मामें स्थित संसारके अध्यासका त्याग करो।

लोकवासना, शास्त्रवासना और देववासना इन तीनों
२८। के कारण ही जीवको मोक्ष नहीं होता।

हे मोक्षकी इच्छा चाहनेवाले संसारकारागृह नेवटें इसको और इसमें वासनारूपी बेड़ी पड़ी है। जो इसको छुरा काटे हे इन तीनोंवासनाओंका त्याग करे। लोकेषणा वित्तैषणा तबही मोक्ष होगा। इहपर पुत्रैषणा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनात्म वासनाओं के समूह से आत्म वासना रहित पुरुष
है इसलिये निरन्तर आत्म निष्ठा में स्थित रहने से
उसका नाश होजाने पर स्पष्ट भासने लगती है।

मन जैसे जैसे अनात्म पुरुष होता जाता है
वैसे वैसे ही वह अन्य वासनाओं को छोड़ता
जाता है, जिस समय वासनाओं से पूर्ण रूप से
छुटकारा होजाता है उस समय आत्मा की
प्रतिबन्ध शून्य अनुभव होने लगता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

1 अभ्यासेन परिस्पन्दे प्राणानां क्षयमागते ।। { १४० (वृद्ध) - महावाक्य रत्नावली
मनः प्रशममायाति - निर्वाणमवशिष्यते ।।

अर्थ- अभ्यास करने से प्राणोंकी क्रियाका क्षय होनेपर मन परम शांत होता है - निर्वाण ही शेष रहता है ।

1 ज्ञेय वस्तु परित्यागे - विलयं याति मानसम् ।।
मानसे विलयं याते - कैवल्यमवशिष्यते ।।

अर्थ- ज्ञेय वस्तु के परित्याग करनेपर मन विलय भावको प्राप्त होता है. मनके विलय होनेपर कैवल्य ही शेष रहता है ।

1 सर्व वेदान्त सिद्धान्त सारं - वाच्यं यथार्थतः ।।
त्वयं मृत्वा त्वयं मृत्वा - त्वयं मेवावशिष्यते ।।

अर्थ- समस्त वेदान्तों के सार को मैं यथार्थ रूप से कहता हूं आपको मारकर आपही उत्पन्न होकर आपही शेष रहता हूं ।। महावाक्यरत्नावली

1 पृथ्वी जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश - इंद्रियोंमें इंद्रियां तन्मात्राओंमें, तन्मात्रा अहंकारमें, अहंकार महत्तत्वमें, महत्तत्व अव्यक्त रूप कारणमें लय होजाते हैं ।

1 अव्यक्त अक्षरमें, अक्षर तम रूप अज्ञानमें लय होता है. तम परदेव परमात्मामें एक भावको प्राप्त होता है । उसपर वे भिन्न नहीं है. न असत है. न सदसत है. अर्थात् वही अद्वैत तत्व है । महावाक्यरत्नावली श्लोक - १५० १५८

ब्रह्माण्ड और उसके अन्दरके लोक कार्यकरणोंको कारणमें लय करके उसके अलावा सूक्ष्मांग कर्मेन्द्रिय प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, अन्तःकरण-चतुष्टय (चार - मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार) को एकत्र करके सर्व भौतिक पदार्थों को अपने अपने कारण पंचभूतोंमें मिलाते जाओ - भूमि जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें, वायु आकाशमें, आकाश - अहंकारमें, अहंकार महत्तत्वमें, महत्तत्व अव्यक्तमें, अव्यक्तको पुरुषमें क्रम से लय होते हैं, विराट, हिरण्यगर्भ ईश्वर आदि २ उपाधि विलय होनेपर परमात्मामें लय होजाते हैं ।

विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः
ध्यानयोगपरोनित्यं - वैराग्यं समुपाश्रितः ।।

1 एकान्त थोड़ा अहार 3 वाणी कायामनको संयममें लगाओ
2 वैराग्यको ध्यानयोग नित्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक: वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान् कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ॥
आत्मैक्य बोधेन विनापि मुक्तिः न सिद्धति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥

अर्थ - चाहे शास्त्रों को की व्याख्या करो, देवताओं की यजन करो कर्मो
का अनुष्ठान अच्छी प्रकार करो तथा देवताओं की उपासना करो
परन्तु ब्रह्मज्ञान के बिना आत्मज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती
कल्पों में भी नहीं होती

श्लोक: किं वेदैः स्मृतिभिः पुराण पठनैः शास्त्रैर्मतां विस्तरैः
स्वर्ग ग्राम कुटी निवास फलदैः कर्मक्रिया विभ्रमैः ॥
मुक्तौकं भवबन्ध दुःख रचना विध्वंस कालानलं ।
स्वात्मानन्द पद प्रवेश कलनं शेषा वाणिग्वृत्तयः ॥

अर्थ - श्रुति स्मृति पुराण और बड़े विस्तार पूर्वक शास्त्रों के पढ़ने से क्या फल
और स्वर्ग रूपी ग्राम में कुटी बना के रहना ही जिसका फलदेने वाले
ऐसे कर्मकाण्ड की कर्त्तव्यता है, विभ्रम से क्या है, संसार बन्धन के दुःख
रचना के विध्वंस करने के लिये प्रलयाग्नि की तरह आत्मानंद पद में प्रवेश
करने के एक उद्योग के बिना और सब शेष वाणिज (व्यापार) कार्य हैं ॥

श्लोक: ब्रह्माण्ड मण्डली मात्रं किं लोभाय मनस्विनः ।
शफरी स्फुरिते नाब्धेः क्षुब्धता जातु जायते ॥

अर्थ. मनस्वी अर्थात ब्रह्मविचार ज्ञान के लुभाने को ब्रह्माण्ड मण्डल तुच्छ है
मच्छली के उछलने से समुद्र नहीं उमगता । तात्पर्य यह है कि ब्रह्मज्ञानी का
चित्त समुद्रवत् गंभीर है । त्रैलोक्य की सम्पत्ति उसके आगे छोटी है
मच्छली है ।

श्लोक: वाग्वैखरी शब्द झरी शास्त्र व्याख्यान कौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये ॥

अर्थ. - जिस प्रकार वाणी का रूप लावण्य तथा मंत्री का बजाने का सुख
देना मनुष्यों के मनोरंजन ही का कारण होता है उससे कुछ तात्पर्य की प्राप्ति नहीं होती
उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता शब्दों का विन्यास व्याख्यान
व्याख्यान की चतुरता और विद्वत्ता भोग ही का कारण है मुक्ति का नहीं ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला
विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला ॥

अर्थ- परम तत्त्वको यदि न जाना तो शास्त्र अध्ययन निष्फल होती है और यदि परम तत्त्वको जान लिया तो भी शास्त्राध्ययन निष्फल (अनावश्यक होती) है ॥

श्लोक = शब्दजालं महारण्यं, चित्त भ्रमण कारणम् ।
अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं, तत्त्व ज्ञैस्तत्त्व मात्मनः ॥

अर्थ= शब्द जाल तो चित्तको भटकाने वाला एक महान वन है इसलिये जिन्हीं तत्त्व ज्ञानी महात्मा ने प्रयत्न पूर्वक आत्मतत्त्वको जानना चाहिये

श्लोक = न गच्छति विना पानं व्याधिरौषध शब्दतः
विना परोक्षानुभवं ब्रह्म शब्दैर्न मुच्यते ॥

अर्थ-औषधको बिना पिये केवल औषधके उच्चारण मात्रसे रोग नहीं जाता इसी प्रकार तत्त्वज्ञानी महात्मासे प्रयत्न पूर्वक आत्मतत्त्वको जानना चाहिये

श्लोक= ना ज्ञान हानिर्न च राग संक्षयो, भवेत्ततः कर्म सदोषमुच्यते ।
(प्रतिषेधिये) ततः पुनः संसृतिरप्य वारिता, तस्मात् बुधो ज्ञान विचार वान्भवेत् ॥

भावार्थ- कर्म के द्वारा अज्ञानका नाश तथा राग का क्षय नहीं हो सकता क्यों कि शुभ कर्मों से पुण्य पापकी उत्पत्ति होती है और पुण्य पापके क्षयसे इष्ट तथा अनिष्ट पदार्थ मिलते हैं, पुनः इन पदार्थों के भोगसे राग की वृद्धि होती है क्यों कि विषय रूपी घृत के पड़ते ही कामनारूपी अग्नि कभी शांत नहीं होती बल्कि बढ़ती जाती है जिससे कि अनिष्ट पदार्थों की उपलब्धि में द्वेष होता है उससे अशुभ विषयकी प्राप्ति एवं प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति एवं प्रतिकूल विषयकी प्राप्ति में दुःख होता है दोनों में अनेक सदोष कर्म होते हैं उनसे दारुण कष्ट सहना पड़ता है इस प्रकार संसार चक्र का कभी अंत नहीं होता है संसार चक्रमें रहनेसे बुद्धि मलीन होती है और मलीन बुद्धि से अपने स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, अतएव बुद्धिमान पुरुषको चाहिये कि ज्ञान के विचार में तत्पर रहे क्यों कि ज्ञान से अज्ञानका नाश होता है इसलिये ज्ञानका ही निचार करता रहे। क्योंकि बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं है

नोट- कर्म मात्रसे सर्वथा मुक्ति नहीं होती है कर्मसे अभ्युदय की वृद्धि होती है धर्म ज्ञानका साधन होसकता है इसलिये निष्काम कर्म करना भी अनुचित नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक नत्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

श्लोक अश्वमेधसहस्राच्च सत्यं चैतुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्राच्च सत्यमेको विशिष्यते॥

(समाधी चार प्रकारकी)

(१) जाग्रत में जाग्रत जैसे सम्पूर्ण जगत भासमान होता है वह जाग्रत में जाग्रत है
(२) जाग्रत में स्वप्न क्योंकि यह सब अनित्य है ऐसा जानना जाग्रत में स्वप्न समाधि है।
(३) जाग्रत में सुषुप्ति जो आदि में नहीं है वह अन्त में भी नहीं रहेगा इसलिये नहीं है यह सुषुप्ति समाधि है।
(४) जाग्रत में तुरीय यह सब में जो चेतन निज स्वरूप केवली जाग्रत में तुरीय है यह तुरीय समाधि है।

श्लोक भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ मुंडक उपनिषद २-२-८

अर्थ जिसने कार्य कारणात्मक ब्रह्म का साक्षात्कार कर लिया हो उसकी हृदय ग्रंथि (अहंकार अथवा यह देह मैं हूं यह भाव) नष्ट होती है सर्व संशय छिन्न होते हैं और सब प्रारब्ध कर्म छोड़कर आगामी (संचित) कर्म क्षय होते हैं।

(जैसे में नाव रहे तो कोई हानि नहीं पर नाव में जल नहीं रहना चाहिये) साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं परन्तु साधक के अन्दर संसार नहीं रहना चाहिये। श्री रामकृष्ण परमहंस।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ॐ. 1h0 ...

सुख प्राप्ति करने जगतमें. जितने ही जितने ध्यायंगे।
उतने ही उतने आत्म से हम दूर हटते जायंगे॥
सुख वास्तवि है आत्म में. गुरु वेद शास्त्र प्रमाण हैं।
जो ढूंढते सुख जगत में. सो मूरख पशु अज्ञान हैं॥१॥
अपने लिवा सब कुछ तजे. नहीं सृष्टि रक्खे दृष्टि में।
भीजा रहे निज रूप में आनन्द रूपी वृष्टि में॥

कोई हाल मस्त कोई माल मस्त कोई मस्त है सुरमे तोते में।
इक खुदमस्ती बिन सभी मस्त हैं पड़े अविद्या स्रोत में।
कोई ऐन मस्त कोई बैन मस्त कोई मस्त है बे मस्ताई में।
इक खुदमस्ती बिन सभी मस्त हैं पड़े मस्त हैं जुदाई में॥
पढ़िये उमर भर शास्त्र सब हु. मिलता न जग का पार है।
न देह के शोधो बिना. नहीं तरण आती तार है॥
मन में पने के दोष से आंखें न अन्धी कीजिये।
तन काश के सर्वज्ञ को छिपा मत लीजिये॥

ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
॥ध्यान बिन्दूपनिषत्॥ ॐ सहनाववतु सहनौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै। तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
मात्रं ते सम्प्रवक्ष्यामि यथोक्तं पूर्वसूरिभिः। योगतत्त्वज्ञानफलं तस्य मात्रं विचिन्तये॥
महाः
स्तीर्णं बहुयोजनम्। भिद्यते ध्याननयोगेन नान्यो भेदः कदाचन॥
तादृं तत्यो पीरस्थितम्। ल शब्दं चाक्षरे क्षीणे निःशब्दं परमं पदम्॥
शब्दं तस्यशब्दस्य यत्परम्। तत्परं विन्दते यस्तु सयोगी
रसीद मुं॥
अवश्य भेजाहस्रं तस्य भागस्य भागिनः। तस्य भागस्य भागार्धं
दूसरे पत्र पर्यन्तम्॥

(आगे पृष्ठ पर)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(४) ॥ध्यानबिन्दूपनिषत्॥ 3 अनेक दीक्षा हैं छिपेतें

पुष्पमध्ये यथागन्धः पयोमध्ये यथा घृतम् ॥तिलमध्ये यथा तैलं पाषाणेष्विव कांचनम् ॥५॥ एवंमसर्वभूतानि मणौ सूत्र इवात्मनि। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥६॥ तिलानां तु यथा तैलं पुष्पेगन्धइवाश्रितः। पुरुषस्य शरीरे तु स बाह्याभ्यन्तरे स्थितः॥ ॥७॥ वृक्षं तु सकलं विद्याच्छाया तस्यैव निष्कला। सकले निष्कलेभावे सर्वत्रात्मा व्यवस्थितः॥

॥८॥ओमित्येकाक्षरंब्रह्म ध्येयं सर्वे मुमुक्षुभिः। पृथिव्याग्नेश्च यद्वेदो भूरित्येव पितामहः॥ ९॥ अकारे तु लयं प्राप्ते प्रथमे प्रणवांशके। अन्तरिक्षं यजुर्वायुर्भुवो विष्णुर्जनार्दनः॥ ॥१०॥ उकारे तु लयं प्राप्ते द्वितीये प्रणवांशके। द्यौः सूर्यः सामवेदश्च स्वरित्येव महेश्वरः॥

॥११॥मकारे तु लयं प्राप्ते तृतीये प्रणवांशके। अकारः पीतवर्णः स्याद्रजोगुण उदीरितः॥ १२॥ उकारः सात्विकः प्रोक्तो मकारः कृष्ण तामसः। अर्धांगश्च चतुष्पादं त्रिस्थानं पंच दैवतम्॥ 13॥ ओंकारं यो न जानाति ब्रह्मणो न भवेत्सः। प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्य मुच्यते॥ १४॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयोभवेत। निर्विशेते क्रियाः सर्वास्तस्मिन्द्रष्टे परावरे॥ १५॥ ओंकार प्रभवादेवा ओंकार प्रभवाः स्वराः। ओंकार प्रभवं सर्वं नैवोंकारं सचराचरम्॥ ॥१६॥ ह्रस्वे ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः संपत्प्रदोऽव्ययः। अर्धमात्रा समायुक्तः प्रणवो मोक्षदायकः॥ ॥१७॥ तैल धारामिवाच्छिन्नं दीर्घं घण्टानिनादवत्। अवाच्यं प्रणवस्याग्रं यस्तं वेद स वेदवित्॥

श्लोक - नबलं क्षत्रियस्यहुब्रह्मणा बल वत्तराः।
ब्रह्म ब्रह्मबलंदिव्यं क्षात्रास्त्र बल वत्तरम्॥

अर्थ - क्षत्रियों के बल को बल नहीं कहते हैं, ब्राह्मण क्षत्रियों से अधिक बलवान है
है - ब्रह्म तेज ब्राह्मणों का बल दिव्य बल है, जो क्षत्रिय के बल से अधिक बलवान है
दोदिये. राजा सगर के पुत्रों को कपिल मुनि ने [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक- भिक्षाशनं तदपि नीरस मेकवारं
शय्या च भूः परिजनो निज देह मात्रम् ॥
वस्त्रं च जीर्ण शत खण्ड मलीन कन्था ।
हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥

अर्थ- निरस अन्न एकही बेर भीख माँगकर खाते हैं, भूमि पर ही सोते हैं, कुटुम्ब भी उनका देह मात्र है, पुराने वस्त्र सैकड़ों टुकड़ों की सी गुदड़ी पहिने ऐसी दशामें प्राप्त हैं तो भी बड़ा आश्चर्य है कि हमें विषय वासना नहीं छोड़ती ।

श्लोक- मही रम्या शय्या विपुल मुपधानं भुजलता
वितानं चा काशं व्यजन मनुकूलो ऽयमनिलः ॥
दीपश्चन्द्रो विरते वनिता सङ्ग मुदितः सदा
सुखं शान्तः शेते मुनि रतनुभूति र्नृप इव ॥ १५८

अर्थ- भूमि ही जिसकी सुन्दर शय्या है भुजाही सुखदायी तकिया आकाश ही चांदोवा अनुकूल वायु ही पंखा और चन्द्रमा ही दीपक है इन सामग्री से विरक्ता रूपी स्त्री के संग आनन्द से शान्त पुरुष सुख पूर्वक बड़े ऐश्वर्यवान् राजा के समान सुख से शयन करते हैं ।

हे जीव ! जिस परब्रह्म ज्ञान के आगे त्रैलोक्य का राज्य फीका पड़ जाता है उस प्राप्त लोक भोजन वस्त्र और मान देने के भोगों में प्रीति मत कर वही एक भोग रत्न ऐसे श्रेष्ठ को नित्य उदित और प्रकाशित है जिसके स्वाद के सामने त्रैलोक्य राज्य आदि सब ऐश्वर्य निरस लोजते हैं ।

इति १५८ वैराग्यशतक · भर्तृहरिशतक

श्लोक धिग्बलं क्षत्रियबलं · ब्रह्म तेजो बलं बलम् ।
एकेनब्रह्म दण्डेन सर्वास्त्राणि हतानिमे ॥ हतानिमे ॥

अर्थ- क्षत्रिय का बल धिक्कार देने योग्य है । ब्रह्म तेज रूपी बल ही बल है । एक ब्रह्म दंड से मेरे ये सब अस्त्र शस्त्र विफल होगये ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सतं मनुष्याणामानन्दः स एकः पितृणां, शतं पितृणां जितलोकाणामानन्दः स एकः गन्धर्व लोक आनन्दो ऽथ, एशतं गन्धर्व लोक आनन्दः स एकः कर्म देवाणांमानन्दो, एकर्मणा देवत्व मभि सम्पद्यनो ऽथ, एशतं कर्म देवाणांमानन्दा स एकः अजान देवाणां मानन्दो. यश्च श्रोत्रिय ऽवृजिनो ऽकाम हतो ऽथ एशत माजान देवाणांमानन्दाः स एकः प्रजापति लोक मानन्दो यश्च श्रोत्रेमो ऽवृजिनो ऽकामत्तो ऽथ एशतं प्रजापति लोक आनन्दाः स एको ब्रह्म लोक आनन्दो यश्च श्रोत्रियो ऽवृजिनो ऽकामत्तो ऽथ यैष एव पुरुष आनंद एष ब्रह्मलोक सम्राडिति ॥ वेदान्त उपनिषद् ॥

अर्थ यानि वैराग्य होने पर ही मोक्ष है, परम वैराग्य कहा है ॥ —

मनुष्य के सुख से सौ गुणा एक पितृ लोक को। और एक पितृ लोक से सौ गुणा पितृ लोक में चन्द्रमंडल में पितृ लोक, इससे सौ गुणा गन्धर्व लोक में। गन्धर्व लोक से सौ गुणा कर्म देवताओं को जो कर्म से देवत्व को प्राप्त हुए कर्म देवता से सौ गुणा अजान देव को। अजान देव से सौ गुणा प्रजापति को। प्रजापति से सौ गुणा ब्रह्म लोक को। इतना सुख तभी हो जब पुरुष वैराग्य होने पर मोक्ष है। इससे अधिक स्व स्वरूप आनंद प्राप्त होने पर है। इस प्रकार समाधि क्रम से हर एक आनन्द से अनन्त आनन्द अकथ्य वैराग्य के तारतम्य से। और सबसे अधिक आनन्द (मोक्ष) है। इस प्रकार समाधि के द्वारा स्व स्वरूप के दिव्य समाधी ध्यान योग की आवश्यकता है योग जीवब्रह्म की एकता ज्ञान होने से सब आनंद ही आनंद है, इससे अधिक कोई आनन्द नहीं है। समाधी योग साधन से क्रम से सब इच्छा ऐसे ही जाएंगी और स्वतः ही वैराग्य होता जावेगा। यही अनन्त वेदान्त अर्थात् ब्रह्म अनुसार वर्तीव करने से होता है। इस प्रकार आनन्द लिखा है। व्यास जी ने भी लिखा है —

यच्च काम सुखम् लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णा क्षय सुख स्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥ व्यास

न सुरं देव राजस्य न सुरं चक्रवर्तिनः।
या दृष्टं बीत रागस्य मुनेरेकान्त वासिनः ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ब्रह्मलोटी सर्व सृष्टि उत्पन्न है)
यही बात तुलसीदासजी ने अपनी रामायण में भी दर्साया है॥

आखिल सृष्टि यह मम उपजाया, सब पर मोरि बराबर दाया।
तिनमें द्विज द्विजनमें श्रुतिधारी, तिनमें निगमधर्म अनुसारी॥
तिनमें प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी, ज्ञानी ते अति प्रिय विज्ञानी।
तिनते पुनि प्रिय मम दासा, जेहि गति मोरि न दूसरि आशा।
नर तनसम नहिं कवनिउ देही, जीव चराचर जाचत तेही॥
सो तनधरि हरि भजहिं न जे नर, होहिं विषय रत मंद मंद तर।
काच किरिच बदले ते लेही, कर ते डारि परस मणि देही॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माहीं, संत मिलन सम सुख जग नाहीं।
पर उपकार वचन मन काया, संत सहज सुभाव खगराया॥
संत सहहिं दुख परहित लागी, परदुख हेतु असंत अभागी।
भूर्ज तरू सम संत कृपाला, परहित निति सह विपति विशाला॥
सन इव खल पर बंधन करई, खाल कढ़ाई विपति सहई।
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी, अहि मूषक इव सुनु उरगारी॥
पर संपदा विनाशि नसाहीं, जिमि शशि हति हिम उपल बिलाहीं।
दुष्ट उदय जग आरत हेतू, जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥
संत उदय संतत सुखकारी, विश्व सुखद जिमि इंदु तमारी।
परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा, पर निंदा सम अघ न गिरीसा॥
हर गुरू निंदक दादुर होई, जन्म सहस्र पाव तन सोई।
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि, जग जनमइ बायस सरीर धरि॥
सुर श्रुति निंदक जे अभिमानी, रौरव नरक परहिं ते प्रानी।
होहिं उलूक संत निंदा रत, मोह निशा प्रिय ज्ञान भानु गत॥
सब के निंदा जे जड़ करहीं, ते चमगादुर होई अवतरहीं।
सुनहु तात अब मानस रोगा, जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल व्याधिन कर मूला, तिन ते पुनि उपजहिं बहु शूला।
काम वात कफ लोभ अपारा, क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जौ तीनहु भाई, उपजइ सन्निपात दुखदाई।
विषय मनोरथ दुर्गम नाना, ते शूला नहिं जाहिं बखाना॥
ममता दद्रु कंडु इरषाई, हरष विषाद गरह बहुताई।
पर सुख देखि जरनि सोई छई, कुष्ठ दुष्टता मन कुटिलाई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ, दंभ कपट मद मान नहरुआ।
तृष्णा उदरवृद्धि अति भारी, त्रिविध ईषणा तरुण तिजारी॥
जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका, कहँ लगि कहौं कुरोग अनेका॥
एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहँ, सो किमि लहै समाधि॥
नेम धर्म आचार तप ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन नहिं रोग जाहिं हरिजान॥
एहि विधि सकल जीव जग रोगी, शोक हर्ष भय प्रीति वियोगी।
मानस रोग कछुक मैं गाये, हहिं सब के लखि बिरलेन्ह पाये॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी, नास न पावहिं जन परितापी।
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे, मुनिहु हृदय का नर बापुरे॥
राम कृपा नासहिं सब रोगा, जौ एहि भाँति बनै संयोगा।
सदगुरू वैद वचन विश्वासा, संयम यह न विषय कै आसा॥
रघुपति भक्ति सजीवन मूरी, अनूपान श्रद्धा मति पूरी।
एहि विधि भलेहि सो रोग नसाहीं, नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

श्लोक: मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥ गीता ७/३

अर्थ = परन्तु हजारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्तिरूपी सिद्धि के लिये यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे परायण हुआ मेरेको तत्त्व से जानता है। अर्थात मुझे जानता है।

जहां काम तृष्णा क्रोध तहां धर्म का नाश।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास॥

भगवान कहते हैं नरक के तीन महाद्वार खुले हुए हैं काम, क्रोध, लोभ इन तीनों को छोड़ना चाहिये

श्लोक: त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

श्लोक: अहं ब्रह्मेति विज्ञाना त्कल्पकोटिशतान्तिम्।
संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्न कर्मवत्॥

जागजाने पर जैसे स्वप्न के कर्म लीन हो जाते हैं वैसे ही ब्रह्म है ऐसा ज्ञान होने से करोड़ों कल्पों के संचित कर्म नष्ट हो जाते हैं॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(इसका तात्पर्य ध्यानमें रखो)

साकारं च निराकारं नेति नेतीति सर्वदा।
भेदा भेद विनिर्मुक्तो वर्तते केवलः शिवः॥

अर्थ = अर्थात न तो साकार है न निराकार है न यह है न वह है न संसार से भिन्न है न अभिन्न है वह तो केवल-खालिस है वही शिव है। अगर समझे तो ऐसा समझे।

हरि देव जगज्जगदेव तदेवहीतो जगतो नाह भिन्न तनुः।
इति यस्य मतिः परमार्थ गतेः स नरो भवसागर मुत्तरति॥

अर्थ - हरि ही जगत है जगत ही हरि है जगत से या हरि से शरीर भिन्न नहीं है। जिसकी ऐसी निश्चय हो गयी है वही परमार्थ रहस्य को समझ सकता है और भवसागर से पार होकर मुक्त होता है।

तात्पर्य - अगर हरि ही जगत है जगत ही हरि है ऐसा समझ लो।

(बन्ध और मोक्ष का स्वरूप) सारांश - अर्थ -

जब चित्त किसी वस्तु की कामना करता है और किसी के लिये शोक करता है किसी का परित्याग करता है और किसी का संग्रह करता है किसी पर हर्षित होता है किसी पर क्रोध करता है तब बन्धन है।

जब चित्त न कुछ चाहता है और न किसी के लिये शोक करता है और न किसी का त्याग करता है और न किसी का संग्रह करता है। और न किसी से हर्षित होता है और न किसी पर क्रोध करता है, जब मुक्ति समझनी चाहिये।

जब चित्त किन्ही दृष्टियों में आसक्त है तब बन्धन है। और जब किसी भी दृष्टि में आसक्त नहीं है तब मोक्ष है।

जब अहंकार नहीं है तब मोक्ष है जब अहंकार है तब बन्धन है। ऐसा समझकर किसी का भी संग्रह अथवा त्याग मत करो। तीनों से रहो अर्थात आत्म आनन्द में मग्न रहो तब ही मोक्ष है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुनीन्द्र- दिनचर्या (लेखक- पं० रामावतार शास्त्री)

(१) जब ब्रह्म विद्या नामक जागरण कला आजाती है, तथा फिर कभी स्वप्न- विस्मृति रूपी नींद नहीं आती वही मुनीलोगों की सो हम जो- 'प्रातर्जागरण' कहलाता है।

(२) देह, इन्द्रिय, मन, प्राण, बुद्धि अहंकार तथा चित्त नामक अशुचि पदार्थों में जड़ अज्ञान के कारण आत्म बुद्धि करली जाती है, तभी आत्मा में अपवित्रता आजाती है। मुनि को उचित है अपनी आत्मा को वैराग्य रूपी मिट्टी से मांज रगड़ कर तथा साक्षित्व भावना रूपी जल से धो कर (मैं तो इन देह आदियों का साक्षी प्रकाश मात्र हूं इनसे मेरा और मुझ से इनका सम्बन्ध नहीं है) यह साक्षित्व भावना ही कहलाती है) प्रतिदिन बड़े प्रातः से इसी का कहना है जिससे देह आदि अनात्म पदार्थों की वासना रूपी गन्ध का सम्बन्ध सर्वथा छूट जाय।

(३) वैराग्य पूर्वक ज्ञान के अभ्यास में लगे हुए पुरुषों की मुमुक्षुता उनका मुख कहलाता है, क्योंकि उस मुमुक्षुता रूपी मुख से ही ज्ञानी मुक्ति सुख का भोग करते हैं। मुनि को उचित है कि अहंता रूपी जल में अपने मुमुक्षुता रूपी मुख को धो डाले यही तो मुनियों का 'मुख- प्रक्षालन' कहलाता है।

(४) मुनि को उचित है कि ज्ञान सूर्य के उदय होने से पहिले सब जगत को प्रकाशित करने वाले संसार कीसमूल बुद्धियों के एक मात्र साक्षी आत्मदेव के उस वरेण्य तेज को उषाकाल होते ही स्मरण करले तदनन्तर इतर विचार मनन को निरना कहते हैं। वह वरणीय आत्म देव मुझ से भिन्न नहीं है।

(५) कभी जागृत अवस्था आती है कभी स्वप्न होने लगते हैं, तथा कभी सुषुप्ति होजाती है। परन्तु इन तीनों अवस्था के बदलते रहने पर भी मात्र के मुझ में सूक्ष्म तरह जो एक तथा केवल ज्ञप्ति तीनों अवस्थाओं में व्याप्त (अनुगत) होरहा है वही ज्ञान मैं हूं।

(६) ज्ञान तथा अज्ञान ज्ञान और अज्ञान के विषय तथा उन विषयों का अहंता ये सब पदार्थ जिस भूमा चैतन्य में प्रकाशित हो रहे हैं वही मैं हूं।

(७) न तो मैं इस स्थूल शरीर का स्वामी हूं न मैं लिंग शरीर का अभिमानी हूं और न मैं इस कारण शरीर (अज्ञान) वाली अपनी आत्मा समझता हूं, ये तीनों तो असत पदार्थ हैं क्योंकि ये तो अजड़ हैं कल नष्ट होजायंगे, मैं तो सत स्वरूप हूं, जड़ इन्हीं अपने वर्तमान रूप में बना रहता हूं। ये तीनों शक्ति जिससे प्रकाशित हो रहे हैं वही मैं हूं। इन प्रकाश्य पदार्थों में तो मैं कोई सा भी नहीं हूं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(८) जब मुनिकी मोह निद्रा का भंग होने लगे अज्ञानान्धकार नष्ट होने को तैयार हो। ज्ञानसूर्य विद्या रूपी उदयाचल की चोटी पर चढ़ने की तैयारी करे तो। त्रिविध रूपी दिशाओं में थोड़े थोड़े अलौकिक प्रकाश की झलक दिखाई देने लगे। दिग्भ्रम भी जब नष्ट होने लगता हो आत्म विषय में संदेह रूपी उलूक भी कहीं जा छिपे हो। बस यह विचित्र उषाकाल ही मुनि लोगों के स्नान का उत्तम समय होता है।

(९) निरन्तर बहने वाली ज्ञान रूपी गंगा के निर्विकल्प समाधि रूपी ह्रद में ॐ आदि मूल मंत्रों का जप करते हुए नख से शिखा तक पूरी तरह डूबकी जो मुनि स्नान करते हैं, वे सदैव निर्मल रहते हैं।

(१०) ऐसा स्नान करने के बाद आत्म विषयक प्रेम तथा चित्त स्थिरता रूपी दो निर्मल वस्त्र पहनने पर जिस वृत्ति में चैतन्य रूपी सूर्य का उदय हो वही तो मुनि की प्रतिदिन कहलाती है। मुझे उचित है कि उसी पवित्र वृत्ति की ओर जाऊं। ध्यान रूपी सुख फैलाते, और निरन्तर आत्म चिन्तन ही करता रहे।

(११) अज्ञान को हटाने के कारण पवित्र तथा अज्ञान का बोध कराने में समर्थ तीक्ष्ण अग्र भाग वाली शास्त्रों के गंभीर तात्पर्य रूपी कुशाओं के पवित्र शिखा वाला जो कि देव कर्म के समय पहना जाता है) बनाकर और खेद रहित होकर तीसरे मार्ग से वेदान्त सूत्र रूपी यज्ञोपवीत पहनकर गुरु मंत्रों के पाठ रूपी शिखा बन्धन करे।

(१२) इसके अनन्तर जिज्ञासा रूपी लम्बा तिलक लगाकर आत्म कर्म का आरंभ करे।

(१३) जिस प्रकार अगस्त्य मुनि ने इतने बड़े समुद्र का आचमन कर लिया था उसी प्रकार इन समस्त जड़ पदार्थों को आत्मानात्म विचार रूपी हथेली पर रखकर इनको सम्पूर्ण आचमन कर जाय। जिससे कि केवल एक आत्मा ही शेष रहे। यही मुनियों का आचमन कहलाता है।

(१४) मन का जन्म ही जगत का जन्म और मन का नाश ही जगत का नाश कहलाता है, क्योंकि मन के उन्मेष (संकल्प) तथा निर्मेष (संकल्प विमुखता) से ही जगत की उत्पत्ति और प्रलय होते हैं। समाधि का अभ्यास करते हुए जब किन्हीं पूर्व संस्कारों की प्रबलता से समाधि से व्युत्थान होने लगे तो वह अवस्था मनोलय और मनों जन्म की संधि कहलाती है, इस संधि काल के आने पर मुनि को सन्ध्या का अनुष्ठान करना चाहिये। अनुभवी लोगों के उपदेश से आत्म तत्व का दर्शन करने वालों को जब व्युत्थान होजाने पर भी आत्म दर्शन [illegible] सन्ध्या कहलाती है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(१५) शरीर के अन्दर का वायु प्राण और अपान कहलाता है। उसकी ऊर्ध्वगति और अधोगति नाम की दो मुख्य गतियां होती हैं। ऊपर को जाता हुआ वायु प्राण कहलाता है और नीचे को जाता हुआ अपान कहलाता है। लकड़ी को चीरने के लिये आरा खींचने वाले कारीगरों की तरह अपान प्राण को ऊपर खींचता है, तथा प्राण अपान को खींचता है। इन दोनों की परस्पर इतनी समान खींचातानी होती है कि यह (प्राणोपासक) जीव निश्चल नहीं होने पाता। अतएव चित्त को स्थिर करने के लिये प्राण और अपान को रोकना आवश्यक होता है। जब प्राण चलने लगता है तब चित्त भी चंचल हो जाता है। उसी प्राण को निश्चल करने पर फिर वह स्वयमेव निश्चल हो जाता है अर्थात् प्राण और चित्त दोनों ऊपर नीचे दौड़ने वाले दो कारीगर हैं। जब ऊपर वाला प्राण रूपी कारीगर ऊपर खींचकर ले जाता है, तब नीचे वाला अपान रूपी कारीगर उसे नीचे खींच लाता है। (इस प्रकार) ऐसा कोई मानते हैं। अतः साथ अपान भी स्थिर हो जाता है।

(१६) दूसरे लोगों का मत यह है कि मन के चंचल होने पर (काम क्रोध आदि के कारण) प्राण भी चंचल हो जाते हैं। अर्थात् तीव्र गति से चलने लग जाते हैं। तथा मन के निश्चल हो जाने पर (जब मन किसी गहरे विचार में डूब जाता है) प्राण भी उतने समय तक निश्चल हो जाते हैं।

(१७) कोई तो प्राणों को विजय करके अपने मन को निश्चल करते हैं, कोई मन को विजय करके प्राणों को निश्चल कर लेते हैं। कोई मन को विजय करके प्राणों को निश्चल कर लेते हैं। तीसरे कोई मन और प्राण दोनों को ही रोककर अपने मन को आत्मा में निश्चल करते हैं। इस प्रकार ये तीनों योगी पाये जाते हैं।

(१८) प्राण के द्वारा मन को वश में करना यह हठ योगियों का मत है। विवेकी मनुष्य मन के संकल्प विकल्प को रोकना यह पातंजल योग तथा सांख्यादिकों का मत है। मन और प्राण दोनों को आत्मा में लगाने वाले राजयोगी हैं। इन दोनों की अपेक्षा श्रेष्ठ कहा है।

(१९) इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना नामक तीन मुख्य नाड़ियां इस शरीर में होती हैं। बायें नासिका में रहने वाली इड़ा चन्द्र नाड़ी, दक्षिण नासिका वाली पिंगला सूर्य नाड़ी कहाती है, और इन दोनों के बीच बीच में तथा शरीर के सब मध्य भाग में रहने वाली सुषुम्ना को मोक्ष नाड़ी कहते हैं।

(२०) स्वभावसेही सब का प्राण वायु काम तथा दक्षिण नासिका से बहता रहता है। जब कोई सुयोगी प्राण के इन दोनों स्वभाविक मार्गों को रोक देता है। तो इन दोनों मार्गों के रुकने पर दो मार्गों के रुकजाने पर तीसरे मार्ग को ढूंढने वाली सर्प की तरह वह प्राण वायु तीसरे सुषुम्ना नामक मार्ग में स्वयमेव प्रवेश कर जाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(२१) मूलाधार चक्र में जीवकी एक कुंडलिनी नामक अति श्रेष्ठ शक्ति सुषुप्त अवस्था में पड़ी रहती है। योगमार्ग के साधन से फिर कुंडलिनी को जगाता है। उसके पश्चात उसे भी साथ लेकर सुषुम्ना नामक मोक्ष मार्ग में प्रवेश करके साधक ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंचे जाता है।

(२२) सुषुम्ना में बहने वाला वह प्राण वह प्राण वायु जब ही ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचता है त्योंही वहां की अलौकिक शीतलता पाकर वह निश्चल हो जाता है। उसके निश्चल होते ही मन भी स्थिर हो जाता है हठयोग की विधि से मन को लीन करने की यह रीति है।

(२३) संकल्प आदि विघ्न योगी जब संकल्प विकल्प रूपी मनोभाग को बन्द कर देते हैं तो उस मनोनाश से प्राण तथा अपान स्वयमेव बन्द हो जाते हैं। जब तक उक्त विधि से मन को नष्ट नहीं किया जाता तब तक निद्रा, मूर्छा आदि में प्राण चलता ही रहता है;

(२४) परन्तु अन्त में दोनों का सिद्धान्त मनोलय में ही पर्यवसित होता है (मुनियों को) इस प्रकार प्राण और मन के सिद्धान्त को जानकर मनोलय करते हुए प्राणायाम करना चाहिये। केवल प्राणायाम से कुछ काल के लिये मन के रुक जाने पर भी विषय वासनाओं के नष्ट नहीं होने से मन का नाश न हो सकेगा। और केवल विवेक से कुछ काल के लिये मन नष्ट हो जायेगा, तब तक वह मन जीवित रहेगा, तब तक कि मन का दूसरा साथी यह प्राण में घुण रूप से मनोनाश नहीं होगा। इसलिये प्रथमतो मन के मल को हटाने के लिये प्राणायाम करना चाहिये। तदनन्तर जो विवेक उत्पन्न होगा, उसी से सर्वतोमन मनोलय हो सकेगा।

(२५) भगवान रूपी गंगाजल लेकर सब पापों को धो डालने के कर्मी की ही चिदादित्य को पूर्णाजलि दे केवल तीन अर्घ्य देना चाहिये।

(२६) यह सब संसार दृश्य है मैं कूटस्थ हूं (अर्थात इस सब का प्रकाशक हूं) यह सब ज्ञानियों का पहिला अर्घ्य है।

(२७) ब्रह्मसत्ता तीनों काल में अबाधित सत्य पदार्थ है शेष जो संसार है वैसा नहीं है परन्तु अवास्तव है। यही ज्ञानियों का दूसरा अर्घ्य कहलाता है।

(२८) यह दृश्य जगत ब्रह्म में नहीं है। किन्तु सर्वत्र केवल में आत्म चैतन्य ही व्याप्त हो रहा है। यही ज्ञानियों का तीसरा अर्घ्य है।

(२९) इस प्रकार अर्घ्य देने से चिदादित्य में निर्मलता आजाती है तथा वह अधिकारी को अपना रूप दिखलाने के लिये प्रसन्न होजाता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि मन समाधि रूपी ब्रह्मकी बड़ी बाधा है अतः यदि उसमें कोई विघ्न
होजाय अर्थात् किसी कारणसे समाधिसे व्युत्थान होजाय तो प्रायश्चित
(चित्तनाश) की विधिको जानकर तुरन्त ही वह प्रायश्चित कर डालना चाहिये।
जैसे यदि क्रोध उत्पन्न होजानेसे आत्माकी स्वाभाविक स्थितिका भंग होता
उसे क्षमासे नाश करना चाहिये। सत्यसे अनृतका संशोधन करना चाहिये
गुरु तथा वेदान्त-वाक्यों में अश्रद्धारूपी विघ्न उपस्थित हो तो उसे श्रद्धासे
विजय करे। कृपणताको सत्पात्रमें दानके द्वारा परास्त कर डाले।
ध्यान करते समय चित्तमें यदि अत्यन्त सूक्ष्म वासनाएं उत्पन्न होजायं तो
उस अवस्थाको भी ध्यानदृष्टिके द्वारा जानते ऐसा न हो कि समाधि भ्रममें
उसी कृपण अवस्थामें ही समझ बैठे। कृपण अवस्थाका स्वरूप
क्या है?
कृपण-समाधिकी इच्छासे बैठनेसे ज्ञेय और विज्ञेय इन दोनोंके अभावके लिये अर्थात्
ज्ञेय और विज्ञेय नहीं होंगे इसलिये मन रागादि नाश नहीं होता। किंवा स्तब्धताको प्राप्त होते हैं
इसे कृपण कहते हैं। इसलिये कुछ क्षणके लिये योगाभ्यास करके स्तब्ध न होकर
या गाना बोला करना चाहिये ऐसा करनेसे मनोनाश होकर ध्यान में लगेगा।
परन्तु जो मन समरूप ब्रह्मको प्राप्त होजाय तो फिर उसे वहांसे हटाना न
चाहिये व चिरकालतक वहीं लगाये ऐसा प्रयत्न करना चाहिये।
इसीको ब्रह्माकार वृत्तिका कहते हैं।
उस पुण्यावस्थाके प्राप्त होजानेपर उसके आनन्दको भोगने की इच्छा भी मन में न आने दे
यदि उस सुखको भोगनेका विचार मन में उत्पन्न होजायगा तो वह सुख उसी समय
न लौट देगा जैसे लौटे हुए पुरुष भयसे पीछे मुड़कर। अनुभव करनेवाले हृदयमें नहीं
ठहरते इसीप्रकार समाधि सुखका अनुभव समाधिसमय नहीं हो सकता। यदि
ठहरेगा तो समाधि भंग होजावेगी। इसलिये समाधि सुखकी इच्छा न करते हुए
अखण्ड परिपूर्ण चैतन्य मात्रका स्मरण रहे। अपनी एकाग्र बुद्धि की
सतर्कता से ब्रह्ममें लीन होजाय, इस रीतिसे मुक्ति रूपी सिद्धिको वह
प्राप्त कर लेता है। (योगवासिष्ठ से संगृहीत)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक - यथा सुवर्णं पुट पाक शोधितं त्यक्त्वा मलं स्वात्मगुणं समृच्छति
तथा मनः सत्त्व रजस्तमोमलं ध्यानेन सन्यज्य समेति तत्त्वम् ॥

जिसप्रकार अग्नि में पुट पाक विधि से शोधा हुआ सोना समस्त मल को त्यागकर अपने स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, उसीप्रकार मन ध्यान के द्वारा सत्व रज तम रूप मल को त्याग कर आत्म तत्व को प्राप्त कर लेता है।

श्लोक निरन्तराभ्यास वशात्तदैक्यं, पङ्कं मनो ब्रह्मणि लीयते यदा।
तदा समाधिः स विकल्प वर्जितः स्वतोऽद्वयानन्द रसानुभाव कः ॥

जिस समय सतत निरन्तर अभ्यास से पंक हीन मन ब्रह्म में लीन होजाता है उस समय अद्वितीय ब्रह्मानंद रस का अनुभव करने वाली वह निर्विकल्प समाधि स्वयं ही सिद्ध होजाती है।

श्लोक: समाधिनानेन समस्त वासना - ग्रन्थेर्विनाशो ऽखिल कर्मनाशः।
अन्तर्बहिः सर्वत एव सर्वदा स्वरूप विस्फूर्ति रयत्नतः स्यात ॥

इस निर्विकल्प समाधि से समस्त वासना-ग्रंथि का नाश होजाता है तथा वासनाओं के नष्ट होने से सम्पूर्ण कर्मों का भी नाश होजाता है। अन्तर्बाह्य सर्वत्र बिना प्रयत्न के ही निरन्तर सच्चिदानन्द स्वरूप की स्फूर्ति होने लगती है।

श्लोक: श्रुतेः शत गुणं विद्यान्मननं मननादपि।
निदिध्यासं लक्ष गुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥

अर्थः वेदान्त के श्रवण मात्र से उसका मनन करना सौ गुणा अच्छा है और मनन से भी लाख गुणा श्रेयस्कर निदिध्यासन (आत्म भावना को अपने चित्त में स्थिर करना) है तथा निदिध्यासन से भी अनन्त गुणा निर्विकल्प समाधि का महत्व है जिससे चित्त की आत्म स्वरूप से चलायमान नहीं होता।

भाग्यवश एकान्त में रहना इन्द्रिय दमन का कारण है। इन्द्रिय दमन चित्त निरोध का कारण है और चित्त निरोध से वासनाओं का नाश होता है तथा वासनाओं के नष्ट होने से योगी को ब्रह्मानन्द रस का अविच्छिन्न अनुभव होता है।

इसलिये मुमुक्षुओं को सदा प्रयत्न पूर्वक चित्त का निरोध करना चाहिये। चित्त निरोध ही योग एवं पुरुषार्थ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक विक्षेपो नास्ति यस्माने न समाधिस्ततो मम।
विक्षेपोवा समाधिर्वा मनसः स्याद्विकारिणः
यत्कृते अथनेका संगादिबाधा हेतौ। पंचदशी।
जिस लिये मुझे (आत्मा को) विक्षेप नहीं होता है इसलिये मेरी समाधि नहीं है। विक्षेप अथवा समाधि ये दोनों अवस्थायें विकारी जो मन है उसके होते हैं॥ लोकमं किम् स्वमनोविशुद्ध॥

यहां समाधि शब्द से निर्विकल्प समाधि का ग्रहण है मन के नाश करने की वासना नाश करने की वासना भी बंधन का कारण है इस लिये मोक्ष के अर्थी को भी आग्रह रहित होना चाहिये

विवेक चूड़ामणी। पृष्ठ ३९९ से ४०६

निर्विकल्प समाधि के संशय रहित ब्रह्मस्वरूप निश्चित साक्षात प्रतीत होवे है और निर्विकल्प समाधि के नहीं होने से तो निश्चयता ब्रह्म साक्षात्कार नहीं होगा क्यों कि मन के स्वभाव को अति चंचल होने से कदाचित अनात्म प्रतीति से मिश्रित आत्म प्रतीति की भी संभावना होवे है समाधि में मन निश्चय होने से अनात्म प्रतीति की संभावना नहीं हो सकती केवल आत्मा का साक्षात्कार होवे है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोहे पृष्ठ पर का अर्थ

मन का रोकना अर्थात् वश में करना मे दोनों मन का धर्म है अर्थात् विक्षेप होना समाधान होना शांत हो जाना यह मन का धर्म है। विक्षेप आता है यह भी न जानना और मन को जानेगा भी नहीं ऐसा न करे। इसमें रम रहे अपने को अलग समझे।

आत्मा में मन का लय हो जाना यानि आत्मा ही समाधि है
समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो। निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्॥
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा स्वयं। तदंतः करणेन गृह्यते॥
अर्थ = समाधि से पवित्र हुए मन को आत्मा में लगाने वाले को जो सुख होता है। उसको वाणी नहीं कह सकती। वह केवल अंतः करण से अनुभव की वस्तु है।

योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्निरोधो ऽपरिग्रहः॥
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्तशीलता॥
अर्थ = अब समाधि के साधनों को कहते हैं। मन की एकाग्रता का वाणी का निरोध परमौन। प्रथम साधन है।
ऐसे ही योग के विरोधी द्रव्य हैं जो चिंता आशा के कारण हैं उनका त्याग दूसरा उपाय है, ऐसी आशा का त्याग, ऐसे ही देश देशान्तर में गमनादि के संकल्प का त्याग और सर्वकाल एकान्त देश में निवास करना परम साधन है। देखो चूड़ा भाणे सर्ग 360
दोहे 366

अर्थ: वैराग्य दो प्रकार पुरुषार्थ पक्षीवत्. पक्षी विज्ञानहि विचक्षण त्वम् ।
विमुक्ति सोपाग्रतलाधिरोहणं. ताभ्यां विना नान्यतरेण सिध्यति ॥
है वेदज्ञ ॥ वैराग्य और बोध इन दोनों को पक्षी के दोनों पंखों समान
मोक्षकामी पुरुष के पंख समझो। इन दोनोंमें से। किसी भी
के बिना केवल एक पंखके द्वारा कोई मुक्ति रूपी अटारी पर नहीं चढ़ सका
अर्थात मोक्ष प्राप्त नहि कि सकता है।

श्लोक: अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढ़ प्रबोधः ।
प्रबुद्धतत्त्वस्यहि बन्धमुक्ति-मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः ॥
अर्थ-अत्यन्त वैराग्यवान को ही समाधि लाभ होता है। समाधिस्थ पुरुष को
ही दृढ़ बोध होता है, तथा सुदृढ़ बोधवान को ही संसार बन्धन छूटता है
और जो संसार बन्धन से छूट गया है, उसी को नित्यानन्द का अनुभव होता है।
अध्याय १ । जितेन्द्रिय पुरुष के लिये वैराग्य सेवन करना सुखदायक है।
पृष्ठ १६६ और कुछ भी प्रतीत नहीं होता और कहा है कि हे अतीव दुरात्मन्
श्लोक: ज्ञान के सहित होतब तो स्वर्गीय साम्राज्य के सुखका -
१६० देनेवाला होता है. पर मुक्ति रूप कामधेनु का नेरना चुल्हा
करने वाली इतीति ये हे वत्स! तुम अपने कल्याण के लिये स्वत
और इच्छा रहित होकर सदा सच्चिदानन्द ब्रह्म में ही अपनी
बुद्धि स्थिर करो।

श्लोक वेदज्ञ वैराग्यञ्च मुमुक्षुत्वं तीव्रं यस्य तु विद्यते ।
अध्याय ४१. तस्मिन्नेवार्थवन्तः स्युः फलवन्तः शमादयः ॥
अर्थ- जिस पुरुष के पुनः तीव्र वैराग्य और मुमुक्षुता है। तिस पुरुष में शमादि साधन
सार्थक होते हैं अर्थात् फल को उत्पन्न करते हैं।
टि- यदि मन्दतर साधन हो वैराग्य मन्द हो तो भी सत्संग करने से और गुरुकी अहर्निश सेवा
करके गुरु की कृपा से वैराग्य शमादि साधनों से मुमुक्षुता यदि पहले अवस्था को प्राप्त
होती है. अज्ञान साधन मुमुक्षुत्व इच्छा आदि में तुल्य वैराग्य हो सकती है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक एतयोर्मन्दता यत्र विरक्तत्व मुमुक्षयोः ।। विवेकचूडामणि
मरौ सलिलवत्तत्र शमादेर्भान मात्रता ।। साधन-81
श्लोक 36

भावार्थ:- वैराग्य मुमुक्षा दोनों को मन्द होने से शमादिका धन निष्फल है, इसीको लोक दृष्टान्तसे दिखावे हैं।
जिस मन्द अधिकारी में मन्द दोनों वैराग्य और मुमुक्षा मन्द हैं तिस पुरुषमें शमादिक प्रतीति मात्रही है अर्थात निष्फल है।

श्लोक: मोक्ष कारण सामग्र्यां भक्तिरेव गरीयसी ।।
स्वस्वरूपानुसन्धानं, भक्तिरित्यभिधीयते ।। श्लोक 37

भावार्थ:- ईश्वर के समान गुरुमें भी भक्ति करने वालेको वेदान्तके पदार्थोंका यथार्थ बोध होवे है. ऐसा श्रुतिमें कथन करने से भक्ति भी ज्ञानके साधनों में कथन करनी उचित है, उसके न कथन करने से न्यूनता दोष प्राप्त होवे है. इस शंकाका उत्तर लोक्य लेख है।
श्रवणका हेतु जो ज्ञान है तिसको कारण रूप सामग्री में भक्ति ही सर्व साधनोंमें श्रेष्ठ है। भक्तिके समान कोई साधन नहीं। इस कारण सर्व वेदोंके अन्त में जैसे वेदान्तका प्रतिपादन है वैसेही सर्व साधनोंके अन्त में भक्तिका प्रतिपादन है। इस हेतुसे न्यूनता दोष नहीं आवे है. अथो आपसे प्रकाशमान पंचकोशसे रहित आत्माके प्रत्यक्ष स्वरूपका जो चिन्तन अभ्यास है, इसको भक्ति कहे हैं।

श्लोक: न गच्छति विना पानं, व्याधेरौषध शब्दतः ।।
विनाऽपरोक्षानुभवं, ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते ।। ६२ ।।

अर्थ:- जैसे पान करने बिना केवल मैंने औषध पिया है ऐसे शब्दके कथन मात्रसे रोग दूर नहीं होता। तैसेही आत्माके अपरोक्ष ज्ञानसे बिना मैं ब्रह्म हूं। तू ब्रह्म है, सर्व जगत ब्रह्म है. ब्रह्मसे भिन्न कुछ नहीं इन शब्दोंके कथन मात्रसे सर्वदुःख संसार बन्धकी निवृत्ति होवे नहीं।
जैसे गुड़ शब्द के कहने से मीठा नहीं होता और मैं धनी हूं ऐसे कहने से दरिद्रता दूर नहीं होती तैसे ही वाणीमात्रके कथनसे अविद्या निवृत्त नहीं होती. केवल ब्रह्मात्माके साक्षात्कारसे अविद्या निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्ति होवे है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक = अकृत्वा दृश्य विलयं मज्ञात्वा तत्त्व मात्मनः ॥
बहुशब्दैः कुतो मुक्ति स्वल्पमात्र फलैर्नृणाम् ॥

दृश्य तीन काल में नहीं इस ज्ञान से दृश्य के विलाप न को न करके अपने आत्मा स्वरूप ब्रह्म को न जान के मैं ब्रह्म हूं ऐसे शब्द मात्र कहने से जिनको कुछ थोड़ा सा फल है वा लोक के पंडितों को उदर भरण मात्र प्रयोजन है उनसे लौकिक पंडितों की वा श्रोतागणों की मुक्ति तो कहां है यद्यपि शब्दों की अचिन्त्य (अचिन्त्य) महिमा है तथापि ऊषर भूमि में वृष्टि जैसे व्यर्थ होती है तैसे ही अनाधिकारी में शब्द भी निष्फल होते हैं।

शंका = युक्ति विचार से बिना भी तर्क से आत्मा का ज्ञान होकर मुक्ति होती है।

उत्तर = नहीं मात्र से आत्मज्ञान हो और मुक्ति नहीं प्राप्त होती है। जैसे स्वर्ण चांदी की खान यथार्थ वक्ता के उपदेश को कुदाला दे धरा भूमि को खोदे ले तैसे ऊपर की मिट्टी का जिस से स्वर्ण चांदी का आवरण होता है उसका दूर करना और तार्थों के उल्काग्रहण करना ऐसा करने से स्वर्ण चांदी का लाभ नहीं होता है स्वर्ण दिखाई आजाता है ऐसे शब्द मात्र से स्वर्ण हाथ नहीं आता है तैसे ही दृढ़ अविनाशी ब्रह्मरूप आत्म धन भी अविद्या और उसके कार्यों को करके आच्छादित है उसको श्रवण रूप उपदेश करके तथा स्वकृत मनन निदिध्यासन करके प्राप्त होते हैं। बिना युक्ति का अनुसारी तर्क दृश्य का अभाव बोधन ब्रह्म निष्ठ के उपदेश के बिना केवल आत्म धन के लाभ नहीं होते हैं।

श्लोक = तस्मात्सर्व प्रयत्नेन भवबन्ध विमुक्तये ॥
स्वैरेव यत्नः कर्तव्यो रोगादिव पंडितैः ॥

हे सर्व प्रयत्न समर्थ शीघ्र मुक्ति को अन्य यत्न करके वा स्वभाव से अप्राप्त होने से संसार बन्ध की निवृत्ति के लिये स्वयं विवेकी पुरुषों को यत्न करना चाहिये, जैसे रोगों की निवृत्ति में अपने यत्न की अपेक्षा होती है तैसे ही मोक्षार्थी को अपने ही यत्न उपयोगी होते हैं।

नोट - इस सब साधनों में वैराग्य ही मुख्य साधन है, वैराग्य रूपी ध्यान देते हैं ज्ञान रूपी तलवार रखते हैं, इसी से वैराग्य दृढ़ होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रुति प्रमाणेक मतै० स्व धर्म - निष्ठा तत्वैवात्म विशुद्धस्य।
विशुद्ध बुद्धेः परमात्म वेदनं तेनैव संसार समूल नाशः॥
जिसका श्रुति प्रमाण में दृढ़ निश्चय होता है उसी को स्व धर्म में निष्ठा होती है और उसी से उसकी चित्त शुद्ध हो जाती है। जिसका चित्त शुद्ध होता है उसी को परमात्मा का ज्ञान होता है और इस ज्ञान से संसार रूपी वृक्ष का समूल नाश हो जाता है।

नीति: शास्त्र सुने निष्फल सदा - जो नहिं होय विवेक।
स्वाद जाने कड़ु छली - चारवैपाक अनेक॥

श्लोक: पठन्ति चतुरोवेदा: धर्मशास्त्रमनेक स:।
आत्म तत्वं न जानाति दर्वी पाक रसं यथा॥ दर्वी-कड़छी

स्वरूपान सन्धान व्यतिरिक्तान मन्य शास्त्राभास्यै-
रुष्ट कुं कं श्रावित व्यर्थो। ।. -

स्वरूप के चिन्तवन से इतर चिन्तवन अधीत शास्त्रों चिन्तवन रूप कार्य में व्यर्थ ही समय खोते हैं।
जैसे ऊंट के पीठ पर दर्वी का फल लादा। उसमें सुगन्ध होते हुए भी न कोई उसका स्वाद लेता है।

उदाहरण दे: जैसे गधा चन्दन लदो बोझा ही मात्र उठाय है
बोझा उठाकर पीठ पर मजदूरी में भुस खाय है॥
षट शास्त्र चारों वेद पढ़े जिसको न आतम बोध है।
विद्या उसे है भार ही मजदूरी काम क्रोध है॥

ज्ञानी अमानी निस्पृही सब काम नायें त्यागता।
मिथ्या जगत को जानिके उसमें नहीं अनुरागता॥
सच्चित तथा आनन्द घन निज रूप में मन लायहै।
विषय जानिके सारे विषय नहिं पास उनके जायहै॥

जैसे चन्दन वन जाने वाले को चन्दन की लकड़ी ही चाहिए उसे घास फूस से क्या मतलब।
विन ग्राहक उपदेश॥

आपात वैराग्य वतो मुमुक्षून भवाब्धि पारं प्रति यात मुद्यतान्।
आशा ग्रहो मज्जयते ऽन्तरालेनिगृह्य कंठे विनिवर्त्य वेगात॥
अर्थ = संसार सागर को पार करने के लिये उद्यत हुए प्राणियों को वैराग्य वाले मुमुक्षुओं को आशारूपी ग्राह अति वेगसे बीचही में रोककर गला पकड़ कर डुबो देता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यच्च काम सुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षय सुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥

अर्थ-तृष्णाके सर्वोत्तम लोकपर जो सुख प्राप्त होता है उसकी सोलहवीं कलाके बराबरभी ऐहलौकिक सुख और पारलौकिक महान सुख भी नहीं होते.

श्लोक विषं विषय वैषम्यं न विषं विष मुच्यते।
जन्मान्तरघना विषया एक देह हरं विषम॥+

अर्थ-लोग जिसे विष जानते हैं वास्तवमें वह विष (जहर) नहीं है किन्तु सांसारिक जो धन स्त्री पुत्र आदि विषयोंका तात्पर्य है वही विष है क्योंकि धन स्त्री पुत्र आदि विषयतो इसलोक मेंही नाश होते हैं किन्तु और विष तिकि एक इसीशरीरको विनष्ट करताहै।

श्लोक यान्येतानि दुःखानि दुर्जरोण्युन्नतानिच।
तृष्णा वल्याः फलानीह तानि दुःखानि राघव॥+

अर्थ-हे रघुवंशी रामजी दुख (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) प्रबलरूप से जीवों को बराबर सताते हैं इन्हें उतारना दुष्कर होजाता है, इसका कारण तृष्णा का प्रबल होना है, क्योंकि सारे दुःख तृष्णा के फलस्वरूप होते हैं।

श्लोक= यावती यावतीजन्तोरिच्छोदेति यथा यथा।
तावती तावती दुःख बीज मुप्तं प्ररोहति॥+ वासिष्ठ

अर्थ-जीवोंको जितनी जितनी किसी चीज की तृष्णा जैसे जैसे उत्पन्न होती है, वह उतनी-उतनी बोयी गई तृष्णा दुःख के बीज को उत्पन्न करती है।

श्लोक= नात्यक्त्वा सुख माप्नोति, नात्यक्त्वा विन्दते परम।
नात्यक्त्वा चाभयः शेते, त्यक्त्वा सर्वं सुखी भवेत्॥ इति वासिष्ठम।

अर्थ= बिना विषय के परित्याग से जीव सुख प्राप्त नहीं करता।
बिना त्याग से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती।
बिना त्याग से जीव निर्भय होकर नहीं सोता।
किन्तु सब विषयों के परित्याग करने से जीव सुखी रह सकता है॥

आगे चित्तसम्बोधनम् सप्त ११ तक पढ़ो.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक यदापं चावितिष्ठं ते ज्ञानानी मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तमाहु परमां गति ।।

जब मन सहित पांचों ज्ञानेंद्रिय - स्थिरता को प्राप्त होती है तथा बुद्धि भी व्यापार नहीं करती वही अवस्था सर्वोत्तम कही गई है ।।

श्लोक - द्वौ क्रमौ चित्त नाशाय - योग ज्ञानं तथैव च: ।
राघवं योगस्तत्रोत्तरोधोहि ज्ञानं सम्यग वेदण ।
असाध्य: कस्य चिद्योग: कस्य चित ज्ञान निश्चय: ।
प्रकारौ द्वौ ततो देवो जगाद परमेश्वर: ।।

अर्थ - हे राघव ! मन नाश के दो उपाय हैं, १ योग, और २ ज्ञान । योग वृत्तियों के निरोध को तथा ज्ञान - आत्म ध्यान से होता है । किसी को इसी को ज्ञान द्वारा से होता है । किसी विशेष को अभ्यास द्वारा से होता है । ईश्वर ने यह दो ही उपाय कहे हैं । दीर्घकाल के बिना अभ्यास के मत साध्य है ।

शब्द मात्र से जो कोई निज स्वरूप से चीह्न ।
अर्थ मुनी क्यों जाय कर व्यर्थ तपस्या कीन्ह ।।

- यावद्यावन्मुनि श्रेष्ठस्त्यं सन्त्यजते खिलम् । (महाभारत शान्तिपर्व १४७ अध्याय)
तावत्तावत्परालोक: परमात्मैव शिष्यते ।।

अर्थ - हे मुनि श्रेष्ठ जितना जितना अपने आप सब छोड़ता जाता है उतना उतना ज्ञान स्वरूप परमात्मा ही शेष रहता है ।

(मनको वश करने का उपाय)

बुद्धे तत्त्वो नधी दोषो सून्ये नेदाना वासिने:
दीर्घं प्रणवं मुच्चार्जं मनोराज्य विजीयते ।

अर्थ - बुद्धि दोष रहित हो, ॐ एकान्त वास हो, प्रणव का दीर्घ उच्चारण करना चाहिये - इन्हीं से इससे मनोराज्य विजय होता है यही मनोराज्य वश में करने का उपाय है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तैलधारा मिवा ~~अविच्छिन्नं~~ विच्छिन्नं, दीर्घं घंटा ~~निनादवत्~~ निनादवत्।
अवाच्यं प्रणवस्यार्थं, यस्तंवेद स वेदवित्॥

तैलधारा के समान एकरूपता और दीर्घ घंटा के नाद के समान हो और प्रणव का ध्यान अवाच्य प्रणव के रूप में हो, ऐसा जो जानता है वही वास्तव में वेद को जानता है।

न सुखं देवराजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत् सुखं वीतरागस्य मुनेरेकान्तशीलिनः॥ व्यास

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोडशीं कलाम्॥ व्यास

(इतना है तेरा ब्रह्मज्ञानी का तत्व)

~~ब्रह्मानंद रसं पीत्वा~~ (ब्रह्मज्ञानी)
ब्रह्मानंद रसं पीत्वा ये तु उन्मत्ताः योगिनः।
इन्द्रोऽपि रंकवत् भाति, का कथा नृप कीटकः॥

अर्थात- ब्रह्मानंद रस को पीकर जो योगी उन्मत्त हो जाते हैं उनके सामने इन्द्र भी रंक तुल्य प्रतीत होता है साधारण नृप रूप कीटों की तो बात ही क्या है।

(ब्रह्मज्ञानी के लक्षण)

मृद्भिक्षा सरितां पतिं चिनुकवत्, खद्योतसंभास्करम्।
मेरुं पश्यति लोष्टवत् कुजगृहं कल्पं द्रुमं काष्ठवत्॥
चिन्तारत्न मणिं शिलासकलवत् पृथ्वीपतिं भृत्यवत्।
त्रैलोक्यं तृणराशिवत् किमपि देहं स्वतः भारवत्॥

अर्थात् ब्रह्मज्ञानी भक्त समुद्र को मुट्ठी भर जल समान तुच्छ, सूर्य को जुगनू समान तुच्छ, मेरु पर्वत को लोष्ट वत् कठोर समान, मंगल ग्रह को कच्चे घर समान, कल्पवृक्ष को काष्ठ समान, चिंतामणि को पत्थर समान, पृथ्वीपति इन्द्र को नौकर के समान, तीन लोक को तृण समान, शरीर को भार समान

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लो. ग्रन्थमध्यस्य मेधावि. विचार्य च पुनः पुनः।
पलालमिव धान्यार्थी. त्यजेत ग्रंथ मशेषतः

अर्थ= ग्रंथ का विद्वान पुरुष अध्ययन करे. और उसमें का सार विचार करे।
जैसे किसान धान्य को ग्रहण कर लेते हैं। वैसे विद्वान शेष छोड़ देता है।
पीने त्याग देते हैं इसी प्रकार सर्व ग्रंथों को देखकर सार वस्तु आत्म-
तत्व का ग्रहण करें असत् शास्त्र को छोड़ देना चाहिये।।

श्लोक - ब्रह्मा भक्ति ध्यान योगानु मुक्षो मुक्ते हे तून्वक्ति साक्षाच्छुतेर्गीः।
रुद्रा संहि. यो वा एतच्छेवलिष्टत्य मुख्य मोक्षो विद्या कल्पिता देह बन्धात्।।
ल. १६८

अर्थ— ब्रह्मा, भक्ति, ध्यान और योग इनको भगवती श्रुति मुमुक्षु की मुक्ति के
साक्षात हेतु बतलाती है। जो इन्हीं में स्थित होजाता है, उसका अविद्या-
कल्पित देह-बन्धन से मोक्ष होजाता है

श्लोक शंकरसंहिता लक्षा १६० उ अर्ध
ऋण मोचन कर्तारः पितुः सन्ति सुतादय।
बन्ध मोचन कर्तारं तु स्वस्मात्स्यो न कश्चन।।

अर्थ— पिता के ऋण को चुकाने वाले पुत्रादि भी होते हैं परन्तु अन्धबन्धन से
छुड़ाने वाला अपने से भिन्न कोई नहीं है।

श्लोक शंकरसंहिता लक्षा १७० ४८ अर्धी
विषयाशा महापाशाद्यो विमुक्तः सु दुस्त्यजात्।
स एव कल्पते मुक्त्यै नान्यः षट शास्त्र वेद्यपि।।

अर्थ— जो विषयों की आशारूप कठिन बन्धन से छूटा हुआ है, वही मोक्ष
भागी होता है और कोई नहीं; चाहे वह छहों दर्शनों का ज्ञाता क्यों
न हो।

विषय क्या हैं? काम, क्रोध, लोभादि - हरएक शब्द के अलग २ विषय
षट शास्त्र, वैशेषिक, न्याय, सांख्य, योग, पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा।

श्लोक शंकरसंहिता १५० ६६
विषयास्त्र ग्रहो येन सुविरक्त्य सिना हतः।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूह वर्जितः।।

अर्थ— जिसने वैराग्य रूपी खड्ग से विषय तृष्णारूपी ग्राह को मार दिया है।
वही निर्विघ्न संसार समुद्र के उस पार जा सकता है (विषयों को विष के समान जाने)

श्लोक शंकरसंहिता लक्षा १७१ ५२
मोहं जहि महामृत्युं देह दार सुतादिषु।
यं जित्वा मुनयो यान्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।।

अर्थ= देह स्त्री और पुत्रादि में मोह रूप महामृत्यु को छोड़ जिसको जीतकर
मुनिजन भगवान के उस परम पद को प्राप्त होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(तत्त्वमसि)

ब्रह्म ज्ञानकी प्राप्ति वालेको अभिमान से रहित होना चाहिये।
अरुण के पुत्र आरुणि उद्दालक के श्वेतकेतु ए क पुत्र थे. बारह वर्ष का वह बालक गुरुके पास पढ़ने लगा. १२ वर्ष गुरुके पास रहकर क्या कारण है कि अंगो सहित चारों वेदों का पूर्ण अध्ययन करके गुरुकी आज्ञासे घर आया. उसको मनमें विचार होने लगा कि मैं बहुत बड़ा विद्वान और बुद्धिमान हूं। इसलिए वह गर्वित उत्पन्न हुआ. वह उद्दालक और विनम्र रहित होकर बिना ही प्रणाम किये पिताके सामने आकर बैठ गया। उसके पिता को आरुणि ऋषि उसका नम्र रहित और छल पूर्ण भाव देखकर इस बातको जानगये इसको वेद के अध्ययनसे क्या गर्व होगया है पुत्र को बोधन करके बोले- हे श्वेत केतो तू ऐसा क्या पढ़ आया है कि अपनेको बड़ा पंडित मानता है। विद्याका स्वरूप तो विनय होती है अभिमानी पुरुष के हृदय में से तो सारे गुण दूर चले जाते हैं और समस्त दोष अपने आप उसमें आ जाते हैं. तूने अपने गुरुसे यह सीखा है। तो बता कि वह ऐसी कौनसी वस्तु है जिस एक के सुनने से बिना सुनी हुई सब वस्तुएं सुनी जाती हैं. जिस एक के विचार से सब विद्या विचारी हुई वस्तुओं का विचार होजाता है जिस एक के ज्ञानसे नहीं जानी हुई सब वस्तुओं का ज्ञान होजाता है। आरुणि के मुखसे ऐसे शब्द सुनकर श्वेतकेतु गद्गद होजाता रहा। वह पिताके चरणों में गिर गया कि मैं तो नहीं जानता हूं. गुरुने भी नहीं लिखलाया. मुझे आप ही उपदेश कीजिये।

आरुणि ने कहा. हे सौम्य! जैसे कारण रूप मिट्टी के पिण्डका ज्ञान होने से. मिट्टी के कार्यरूप घट. शराव आदि. समस्त वस्तुओंका ज्ञान होजाता है और यह बात समझ आजाती है कि घट आदिका कार्यरूप वस्तुएं सत्य नहीं हैं केवल वाणीका विकार है. सत्य तो केवल मिट्टी ही है।
हे सौम्य जैसे कारण रूप सोनेके पिंडका ज्ञान होने से सोनेके कड़े कुंडल आदि सब कार्यों का ज्ञान होजाता है और यह पता लग जाता है कि कुंडल आदि सत्य नहीं हैं वाणीका विकार हैं. असत्य हैं स्वर्ण ही सत्य है।
इसी प्रकार नख काटने की नहरनी आदि में रहे हुए लोहे का ज्ञान होजाने से खड्ग परशु, अग्नि ज्ञान होजाता है कि सब में लोहा ही सत्य है ये सब नाम रूप का विकार है। (अपूर्ण)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वेतकेतु अपने पिता से कहने लगा कि मुझे - उस वस्तु का उपदेश दीजिये जिससे छोटे जानने से सबको जान लेते हैं। -

1 हे प्रियदर्शन! यह नाम रूप और क्रिया स्वरूप दृश्यमान जगत उत्पन्न होने से पहिले केवल अद्वितीय, सत् ही था, उस सत् ने संकल्प किया कि मैं बहुत होजाऊं ऐसा संकल्प करके उसने पहिले तेज उत्पन्न किया। उस तेज ने उत्पन्न होकर उसने अन्न उत्पन्न किया। इसलिये - जब जब पदार्थ उत्पन्न हुए जगत में जितनी वस्तु हैं तेज जल अन्न तीनों के मिश्रण से बनी हैं जहां प्रबलता या गर्मी है, वह तेज तत्व की प्रधानता है जहां द्रव प्रवाहीपना है वहां जल की प्रधानता है जहां स्थायी पना है वह अन्न की प्रधानता है। अग्नि में जो लाल, श्वेत और कृष्ण वर्ण है उसमें लाल वर्ण तेज की, सफेद जल की और श्यामता पृथ्वी की है। महीधातु रूप चन्द्रमा बिजली में भी है। यही अग्नि, सूर्य चंद्रमा और बिजली में से निकाल दीजिये तो अग्नि में अग्निपन, सूर्य में सूर्यपन, चन्द्रमा में चन्द्रपन और विद्युत में विद्युतपन कुछ भी नहीं रहजायगा। इसी प्रकार सब में समझना चाहिये।

1 खाये हुए अन्न के भी तीन रूप होजाते हैं। स्थूल भाग विष्ठा बनजाता है मध्यम भाग मांस बनजाता है और सूक्ष्म भाग मन रूप होजाता है। इसीतरह जल के स्थूल भाग से मूत्र बनता है, मध्य भाग से रक्त बनता है और सूक्ष्म भाग प्राण बनता है। -

1 दधी प्रक्रिया - तेल घृत आदि तेजस पदार्थों के स्थूल भाग से हड्डी बनती है मध्यम भाग मज्जा रूप होजाता है और सूक्ष्म भाग वाणी रूप होजाता है अन्न का मन अन्नमय है प्राण जलमय है और वाक् तेजमय है अर्थात - मन अन्न से बनता है, प्राण जल से बनता है और वाणी तेज से बनती है।

1 जैसे दही मथने से उसका सूक्ष्म भाग सार तत्व नवनीत ऊपर आजाता है। इसी प्रकार जो अन्न खायाजाता है उसका स्थूल भाग अंश मल बनजाता है, मध्यम भाग मांस और सूक्ष्म भाग अंश मन बनजाता है, जलका स्थूल भाग मूत्र, मध्य भाग रक्त और सूक्ष्म भाग अंश प्राण बनजाता है, तेज का स्थूल

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असल में मनप्राण और वाणी तथा इनके कारण अनाहि कर्म-कारण-
परम्परा के मूल में एक ही सत वस्तु रहते हैं। सब का मूल ब्रह्म सत है
यही परम आश्रय और अधिष्ठान है। सत के कार्य नाना प्रकार की आकृतियां
सब वाणी के विकार हैं नाम मात्र हैं। यह सत अणु की भांति सूक्ष्म है
समस्त जगत का आत्मा रूप है जैसे सर्प में रज्जु कल्पित है इसी प्रका
जगत इस सत में कल्पित है। हे श्वेतकेतो! वह सत् वस्तु तू है।
तत्त्वमसि।

हे सौम्य! जैसे शहद की मक्खी अनेक प्रकार के वृक्षों के रसको एकत्र करके
उनको एक रस के शहद के रूप में परिणत कर लेती है, शहद होने पर यह नहीं
जानता कि मैं अमुक वृक्ष का या कटहर के वृक्ष का रस हूं इसी प्रका सुषुप्ति
काल में जीव सत वस्तु के साथ एकी भाव को प्राप्त होकर यह नहीं
जानता कि हम सत में मिलकर गये हैं, सुषुप्ति से जागकर पुनः वे अपना
अपने पहिले के नाम रूप को प्राप्त होते हैं, और कीट पतंग और मच्छड़ के शरीर को प्राप्त
होते हैं। यह जो सूक्ष्म तत्व है यही आत्मा है, यह सत है श्वेतकेतो
वह तू है। तत्त्वमसि।

जैसे नदी के जाल से बहती हुई इधर उधर गंगा आदि नदियां अन्त में समुद्र में
ही मिलकर अपने नाम रूप को त्याग देती हैं यह नहीं जानती कि मैं गंगा हूं
अब यमुना समुद्र भाव को प्राप्त हो जाती हैं, और कभी होने पर वह निश्चय
भाव नहीं जानती कि मैं वह नदी थी। इसी प्रका जीव
भी सत में से निकलकर सत में ही लीन होते हैं, और पुनः उत्पन्न होकर
हैं परन्तु यह नहीं जानते कि हम सत से आये हैं और यही सत्य है
वृक्ष शूकर की कीट पतंग या मच्छड़ जोर पहिले लोगों ने हो जाते हैं।
यह जो सूक्ष्म तत्व रूप आत्मा है यह सत है यही आत्मा है।
श्वेतकेतु यह तू ही है। — तत्त्वमसि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हे सौम्य। बड़े भारी वृक्षकी जड़को कोई चोट करे वह हरी रहेगा नहीं सूखेगा। छेदन करे काटे। जबतक उसमें जीवात्मा व्याप्त रहता है तबतक वह मूलसे लेकर अग्रभाग तक हराभरा आनन्दसे रहता है जब इस वृक्षकी एक शाखासे जीव निकल जाता है तब वह शाखा सूख जाती है दूसरी निकलनेपर दूसरी इसी प्रकार सारे शरीरसे जीव त्याग देता है तब वह सब का सब सूख जाता है इसी प्रकार यह शरीर भी जीवरहित हो जाता है। तभी मृत्युको प्राप्त हो जाता है यह जीवरूप सूक्ष्म तत्त्व ही आत्मा है यह सत्य ही आत्मा है हे श्वेतकेतो वह सत्य तू ही है। तत्त्वमसि।

(श्वेतकेतु नेकटाके फिर समझाते हैं पिता आज्ञा से कहा अच्छा एक इस फलको तोड़ कर लाओ। उसने फल तोड़कर लाया। इसे तोड़ो देखो इसमें क्या दीखता है उसने कहा जी दीखते हैं। आओ उसे फोड़ो। इसमें कुछ नजर आता है, इसमें तो कुछ भी नहीं दीख पड़ता। तब पिता आज्ञा दी हे सौम्य तू इस बड़ी बड़े बीजको नहीं देखता इस अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वसे ही महान वट का वृक्ष निकलता है। बस जैसे यह अत्यन्त सूक्ष्म बट-बीज बड़े भारी वृक्षके वृद्धिका आधार है, इसी प्रकार सूक्ष्म सत आत्मा इस समस्त स्थूल जगत का आधार है वही तू है। तत्त्वमसि।

(दूसरा उदाहरण- एक नमककी डली श्वेतकेतुके हाथमें देके कहा कि इसे पानीभरे लोटे में डाल दो। उसने देखा दीख नहीं पड़ा। अच्छा इस लोटेका थोड़ा जल लेके चखो। क्या कैसा स्वाद है। बीच में चखो, सब तरफ से चखो अनार्थ स्वाद ही स्वाद मिला। पानी निमक अंशमें दीखता नहीं देखता जीभ द्वारा मालूम होता है उसी प्रकार जलमें भरे हुए समुद्रमें जो नमक की डली देखते नहीं लोभी वह विद्यमान है इसी प्रकार सूक्ष्म सत आत्मा वह सत है वही आत्मा तू है। तत्त्वमसि।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

1 श्वेतकेतु के निकट पिताजी इसके फिर उपदेश कीजिये तब गौतम उद्दालक बोले.
पुत्र जैसे आंखों पर पट्टी बांधकर किसी मनुष्य को बहुत दूर के गान्धार
देशसे लाकर किसी जंगलमें सिंधु प्रदेश में छोड़ देवें वह पूर्व.
पश्चिम उत्तर, दक्षिण, चारों दिशा औंधी ओर देश देशका सहायता
दीजिये. पुकारने वाले के मुखको आंखों पर पट्टी को खोल देने पर
छोड़ दिया तो वो जैसे उसकी करुण पुकार को सुनकर कोई दयालु
पुरुष दयाकर के उसकी आंखों की पट्टी खोलदे, तो उससे कहदे कि
गांधार देश इस दिशामें है तहां से पूछते चलाजा।
वहां पहुंच जायगा। और वह बुद्धिमान अधिकारी
एक गांवसे दूसरे गांव पूछताछ करता हुआ आपने आपको
गांधार देशको पहुंच जाताहै। इसी प्रकार अज्ञानकी
पट्टी बांधे हुए क्रोध लोभादि चोरोंके हाथ संसार रूपी
भयंकर वन में छोड़ा हुआजीव ब्रह्मविद्या रूपी के द्वारपाल
गोवत्तमगुरु मिलने चलने की आवेदनाके फन्दे से छूटके अपने
मूल स्वरूप सत आत्माको प्राप्त होजाताहै यही सूक्ष्म
तत्वहै सो आत्माहै। वह सत्य है वही आत्माहै
हे श्वेतकेतु वह आत्मा तूहैहै। तत्वमसि -
इसीका अर्थ समझो अरुण कल्याणहो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणि. साधन.

श्लोक. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ गीता. ३।४२

सम्पूर्ण विषय इन्द्रियों के आश्रय होने से, विषयोंसेभी इन्द्रियां हैं। अर्थात् शरीरकी क्रिया सब इन्द्रियोंके आश्रय होनेसे, देहसेभी इन्द्रियां हैं। इन्द्रियों की क्रिया मनके आश्रयसे हैं। इससे इन्द्रियोंसे परे मन है। मनकी क्रियाके आश्रय बुद्धि है। इससे मनसेभी परे बुद्धि है, और बुद्धेरात्मा होनेसे बुद्धिसेभी परे आत्मा है।

इससे इन्द्रियोंका लय, मनमें और मनका लय बुद्धि में तथा बुद्धिका लय आत्मा में होनेसे एक आत्माही शेष रहता है।

एक मनका समाधान होनेसे इन्द्रिय मन बुद्धिका क्रमसे लय होजावेगा. क्योंकि एकही मन तीन भाव धारता है — जब इन्द्रियोंसे बाह्य वस्तु देखता है तब इन्द्रियरूप होजाता है। जब बाहिरी चेष्टा बन्द और भीतर चिंतन करता है तब मनरूप होजाता है। जब भीतर चेष्टा करता, बाहरकी चेष्टा बन्द करता है, तब बुद्धि रूप होजाता है।

श्लोक स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते॥

१ अपने स्वरूपका अनुसंधान करना और आत्मस्वरूपमें लगे रहना
२ नित्य प्रत्यय योगना एक मुहूर्तमात्र भी
यदि चिंतन होजाय तो सर्व बन्धनसे छूट जाता है।

श्लोक = जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपंचम् यत्प्रकाशते।
विलयम् तस्य यो वेद तत्पदम् नमाम्यहम्॥

(१) जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जो यह प्रपंच दिखता है, मैं वह हूं ऐसा ज्ञान होगया तो सम्पूर्ण बन्धनोंसे छूटा हुआ मैं ब्रह्मरूप होता हूं। सर्वोपरि ब्रह्मरूप

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(आत्मज्ञानका महत्व)

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्व बोधेन, मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा॥

मोक्ष - न योगसे सिद्ध होता है न सांख्य से न कर्मसे और न विद्यासे
इन्द्रियाणां मनोनाथो, मनोनाथस्तु मारुतः (की एकाग्रता) सेती
मारुतस्य लयोनाथः, सलयोनाहमाश्रेतः
इन्द्रिय - श्रोत आदि इन्द्रियोंका नाथ मन, मनका नाथ
मारुत प्राण। और मारुतका नाथ लय। वह मनका
लय नाशसे अनाश्रित होता है। यह योगकी रीति है ॥
..... होता है। जब निर्विकल्प
समाधि द्वारा अहंत्व आत्म स्वरूपको साक्षात्कार कर लिया जाता है।

योगस्य प्रथमं द्वारं - वाङ्निरोधो ऽपरिग्रहः।
निराशाश्च निराहाश्च नित्यमेकान्तशीलता॥

वाणीको रोकना। द्रव्यका संग्रह न करना। लौकिक पदार्थोंकी आशा छोड़ना
कामनाओंका त्याग करना। और नित्य एकान्तमें रहना। यह योगका =
पहिला द्वार है।-

वाणीको मनमें लय करो मनको बुद्धिमें और बुद्धिको साक्षी आत्मामें
तथा बुद्धि साक्षी कूटस्थको निर्विकल्प पूर्ण ब्रह्ममें लय करके परम
शान्तिका अनुभव करो।-

(ध्यान विधि)

चित्तको अपने लक्ष्य ब्रह्ममें दृढ़ताईसे स्थिर करो। बाह्य इंद्रियोंको उनके
विषयोंसे हटाकर अपने अपने गोलकोंमें स्थिर करो शरीरको निश्चल रखो
और उसकी स्थितिकी ओर ध्यान मत दो। इस प्रकार ब्रह्म और आत्माकी
एकताका सच्चा अभ्यास करो अखंड ज्ञानसे अहंकार मन बुद्धि आनन्दमय
ब्रह्मानंद रसका पान करो। और थोथी बातोंसे क्या लाभ है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रियाणि. साधन.

श्लोक. इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥ गीता ३।४२

[redacted]

इससे इन्द्रियों का लय, मन मे
आत्मा में होनेसे एक आत्माही शेष रहताहै

1 एक मनका समाधान होनेसे इन्द्रिय मन बुद्धि का क्रमसे लय होजावेगा.
क्योंकि एकटीमन तीन भाव वालाहै — ~~जबतक यही मन समर्थ~~
जब इन्द्रियों के द्वारा जगतको देखताहै तब इन्द्रियरूप होजाता है
जब बाहिरी चेष्टा बन्द अंतरचिंतनकरताहै तब मनरूप होताहै
जब अंतर चेष्टा करताहै, बाहरकी चेष्टा बन्द होजाती, तब —
बुद्धि होताहै. तब बुद्धि कहलाताहै

श्लोक स्वस्वरूपानुसन्धानं नृत्यन्तम् सर्वसाक्षिणम्
मुहूर्तम् चिन्तयेन्मात्रं सर्वबन्धैः प्रमुच्यते॥
1 अपने स्वरूपका अनुसन्धान करना | ओं आत्मस्वरूपहै ऐसा
2 नृत्यन्तम् - अ - नित्य पदार्थ | जानना - एक मुहूर्तमात्र अ —
— नित्य चिंतन होजायतो सर्वबन्धनसे छुटजाताहै

श्लोक = जाग्रत स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपंचम् यत्प्रकाशते।
(1) यद्भासा दृश्यमेतत्तत्- सर्वबन्धैः प्रमुच्यते॥
जाग्रत
स्वप्न
सुषुप्ति
ओम् यह प्रपंच दिखाई देरहाहै, मैं ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञान होजाय तो
समस्त बन्धनोंसे छूटा [redacted] जाताहै। सर्वबन्धन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(आत्मज्ञानका महत्व)

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन, मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा॥

मोक्ष - न योगसे सिद्ध होता है. न सांख्यसे न कर्मसे और न विद्यासे
वे केवल ब्रह्मात्मैक्य बोध (ब्रह्म और आत्माकी एकता ज्ञान) सेही
होता है - और इसी प्रकार नहीं।

(समाधि निरूपण)

अज्ञान हृदय ग्रन्थेर्निःशेष विलयस्तदा।
सविकल्पेन, यदा दृष्टात्म दर्शनम्॥

अर्थ - अज्ञानरूप हृदयकी ग्रंथिका सर्वथा नाशतो तभीहोताहै, जब निर्विकल्प
समाधिद्वारा अद्वैत आत्म स्वरूपका साक्षात्कार कियाजाताहै।

योगस्य प्रथमं द्वारं - वाङ्निरोधो ऽपरिग्रहः।
निराशाच्च निराहाच्च नित्यमेकान्त शीलता॥

वाणीको रोकना - द्रव्यका संग्रह न करना. लौकिक पदार्थोंकी आशा छोड़ना
कामनाओंका त्याग करना - और नित्य एकान्तमें रहना। येसब योगका=
पहिला द्वार है।-

या - वाणीको मनमें लय करो मनको बुद्धिमें और बुद्धिको साक्षी आत्मामें
तथा बुद्धि साक्षी कूटस्थको निर्विकल्प पूर्णब्रह्ममें लय करके परम
शान्तिका अनुभव करो।-

(ध्यान विधि)

चित्तको अपने लक्ष्यब्रह्ममें दृढ़ताके साथ स्थिरकर. बाह्य इंद्रियोंको उनके-
विषयोंसे हटाकर अपने अपने गोलकोंमें स्थिरकर शरीरको निश्चल रखो
और उसकी स्थितिकी ओर ध्यानमत दो. इस प्रकार ब्रह्म और आत्माकी-
एकतारूप तत्वमसि भावसे अखंड ज्ञानसे अहर्निश मनन करते करते
ब्रह्मानंदरसका पान करो. और शोधनातीत क्या होगा?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषम विषय मार्ग गच्छतो ऽनच्छ बुद्धेः,
प्रति पदमभियातो मृत्यु रप्येष विद्धि।
हित सुजन गुरूक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या,
प्रभवति फल सिद्धेः सत्य मित्येव विद्धि॥

अर्थ= विषमरूपी विषम मार्ग में चलने वाले - मलिन बुद्धि को पदपद पर मृत्यु आती है - ऐसा जानो। और महात्मा मित्र गुरु ठीक मार्ग को कहे - हितैषी राजा अथवा गुरु के कथनानुसार अपनी बुद्धि से चलने वाले को फल सिद्धि होती जाती है।

शरीर पोषणार्थी सन् य आत्मानं दिदृक्षति।
ग्राहं दारुधिया धृत्वा नदीं तर्तुं स इच्छति॥

अर्थ- जो शरीर पोषण में लगा हुआ आत्म तत्व को देखना चाहता है वह मानो काष्ठ बुद्धि से ग्राह को पकड़ कर नदी पार करना चाहता है

धैर्यं यस्यापिता क्षमा च जननी शांति श्चिरं गेहिनी।
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोपि वसनं ज्ञानामृत भोजनम्।
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्मात भयं योगिनः॥

अर्थ- धैर्य पिता क्षमा माता शांति पत्नि सत्य पुत्र दया बहिन मन संयम भ्राता भूमिशय्या वस्त्र दिशा ज्ञान अमृत भोजन ऐसे कुटुम्बी जिसके हो उस योगी को भय कहाँ?

अथवा इस प्रकार कहते हैं -

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शांति पत्नि क्षमा पुत्रो षडेते मम बांधवा॥

द्रव्य लावण्य युक्तापि चित्र कान्तेव कामिनी।
द्रव्य मात्र समा रम्या तत्त्व निर्णीर्विलोक्यते॥

तत्त्वदर्शी को चित्र लावण्य स्त्री के समान द्रव्य मात्र ही दिखती है अर्थात् द्रव्य को नाशवान देखता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(विषय-निन्द)

शब्दादिभिः पंचभिरेव पंच पंचत्व मापुः स्वगुणेन बद्धाः।
कुरंग मातंग पतंग मीन भृङ्ग नरः पंचभिरंचितः किम्॥

अपने २ स्वभाव के अनुसार शब्दादि पांच विषयों में से केवल एक एक से बंधे हुए हरिण, हाथी, पतंग, मछली और भौंरे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर पांचों से जकड़ा हुआ कौन बच सकता है।

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णासर्प विषादपि।
विषं निहन्ति ...

दोष में विषय काले सर्प के विष से भी अधिक तीव्र है। क्योंकि विष खाने वाले को ही मारता है और विषय देखने वाले को भी मारते हैं।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोध स्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्।

नरक के द्वार तीन हैं काम-क्रोध-और लोभ इन तीनों का त्यागना चाहिये।

त्रयमज्जयंती ... तारं प्रतियातु मुद्यतान।
संसार सागर को पार करने के लिये उद्यत हुए मुमुक्षुओं के ... वाले ... अति वेग से बीच में से कूद कर गला पकड़ कर डुबा देते हैं।

इति विषयारण्य ग्राहो येन सुविरक्त्यासिना हतः।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूह वर्जितः॥

जिसने वैराग्य रूपी खड्ग से विषय रूपी ग्राहको मार दिया है वह निर्विघ्न संसार समुद्र के उस पार जा सकता है।

श्लोक - विषमविषय भागे - यह श्लोक बगल में पेंसिल से लिखा है

मोक्षस्य काङ्क्षा यदि वै तवास्ति, त्यजाति दूरा द्विषयान् विषं यथा।
पीयूष वत्तोष दया क्षमार्जव प्रशान्ति भैजं नित्यमादरात्॥

अर्थ - यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो विषयों को विष के समान दूर से ही त्याग। और संतोष, दया, क्षमा, सरलता, शान्ति के औषध को अमृत के समान नित्य आदर पूर्वक सेवन कर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विषम विषय मार्ग गच्छतोऽनच्छ बुद्धेः,
प्रतिपदमभियातो मृत्यु रप्येष विद्धि।
हित सुजन गुरूक्त्या गच्छतः स्वस्य युक्त्या,
प्रभवति फल सिद्धिः सत्य मित्येव विद्धि॥-

अर्थ= विषयरूपी विषम मार्ग में चलने वाले - मलिन बुद्धि को पदपद पर मृत्यु आती है, ऐसा जानो। और सद्भाग्य विवेक से ठीक मार्ग को पकड़े - हित की सज्जन अथवा गुरु के कथन [illegible] फल सिद्धि होती जानो।

शरीर पोषणार्थी सन् य आत्म
ग्राहं दारुधियो वृत्वा

अर्थ= जो शरीर पोषण में लगा हुआ [illegible] मानो काष्ठ बुद्धि से ग्राह [illegible]

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शांति श्चिरं गेहिनी।
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृत भोजनम्।
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्मात भयं योगिनम्॥

अर्थ- धैर्य पिता क्षमा माता शांति पत्नि सत्य पुत्र दया बहिन मनसंयम भ्राता भूमिशय्या वस्त्र दिशा ज्ञानअमृत भोजन ऐसे कुटुम्बी होते हुए योगी को भय कहाँ?

और इस प्रकार कहा है-

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा।
शांति पत्नि क्षमा पुत्रो षडेते मम बांधवा॥

श्लोक - रूप लावण्य सुकाये चित्र कान्तेव कामिनी।
द्रव्य मात्र समारंभा तत्त्व निर्दर्शिभिर्दृश्यते॥

तत्त्वदर्शी ने रूप लावण्य स्त्री के चित्र युक्त समान है। जो चित्र की स्त्री है द्रव्य मात्र [illegible] मिट्टी पानी रंग आदि द्रव्यों से बनी हुई [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(विषय-निन्द)

शब्दादिभिः पंचभिरेव पंच पंचत्व मापुः स्वगुणेन बद्धाः।
कुरंग मातंग पतंग मीन भृङ्ग नरः पंचभिरंचितः किम॥

अपने २ स्वभाव के अनुसार शब्दादि पांच विषयों में से केवल एक एक से बंधे हुए हरिण, हाथी, पतंग, मच्छली और भौंरे मृत्यु को प्राप्त होते हैं। फिर पांचों से जकड़ा हुआ कौन बच सकता है।

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णासर्प विषादपि।
विषं निहन्ति भोक्तारं दृष्टं चश्रुषाप्यमुम्॥

होकर में विषय को केवल एक दोष दिखाया है परंतु विषय तो अनेक दोषों से दूषित है। क्योंकि विषधर सर्प तो खाने वाले को ही मारता है और विषय देखने वाले को भी मारते हैं।

विषयाशा महापाशा द्यो, विमुक्तः सु दुस्त्यजात्।
स एव कल्पते मुक्तै नान्यः षट शास्त्र वेद्यपि॥ मुक्तये

जो विषयों की आशा रूप कठिन बन्धन से छूट जाता है वही मोक्ष के योग्य होता है अन्य दूसरे नहीं। चाहे वह छहों दर्शनों का ज्ञाता क्यों न हो।

आपात वैराग्यवतो मुमुक्षून् भवाब्धिपारं प्रतियातु मुद्यतान्।
आशा ग्रहो मज्जयते ऽन्तरालेनिगृह्य कंठे विनिवर्त्य वेगात्॥

संसार सागर को पार करने के लिये उद्यत हुए क्षणिक वैराग्य वाले मुमुक्षुओं को आशा रूपी ग्राह अति वेग से बीच में ही कंठ को पकड़ कर गला घोंट कर डुबा देता है।

छोड़ विषयाख्य ग्रहो येन सुविरक्त्यसिना हतः।
स गच्छति भवाम्भोधेः पारं प्रत्यूह वर्जितः॥

जिसने वैराग्य रूपी खड्ग से विषय रूपी ग्राह को मार दिया है वही संसार सागर के पार जा सकता है।

श्लोक - विषमविषय मार्गे - यह श्लोक बगल में खड़ा लिखा है

मोक्षस्य कांक्षा यदि वै तवास्ति, त्यजाति दूरा द्विषयान् विषं यथा।
पीयूष वत्तोष दया क्षमार्जव प्रशान्ति भैजं नित्यमादृतात्॥

अर्थ - यदि तुझे मोक्ष की इच्छा है तो विषयों को विष के समान दूर से ही त्याग दे और संतोष, दया, क्षमा, सरलता, प्रशान्ति का सदा आदर कर।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यदिदं सकलं विश्वं नाना रूपं प्रतीतमज्ञानात् ।
तत्सर्वं ब्रह्मैव प्रत्यस्ताशेष भावना दोषम् ॥

अर्थ - यह सम्पूर्ण विश्व जो अज्ञान से नानाप्रकार का प्रतीत होता है समस्त भावनाओं के दोष से रहित अर्थात निर्विकल्प ब्रह्म ही है

दृष्टान्त मृत्कार्य श्रुतोऽपि मृद्दो नभिन्नः कुंभोऽस्ति सर्वत्र तु मृत्स्वरूपात् ।
न कुंभ रूपं पृथगास्ति कुंभः कुतो मृषा कल्पित नाममात्रः ॥

(घड़ा) मिट्टी का कार्य होने पर भी घड़ा उससे पृथक नहीं हो सकता — क्योंकि सब ओर से मृत्तिका रूप होने के कारण घड़े का रूप मृत्तिका से पृथक नहीं है। अतः मिट्टी में कल्पित मिथ्या नाम मात्र घड़ा क्या सत्ता रखता है?

मिट्टी से अलग घड़े का रूप कोई भी नहीं दिखा सकता इसलिये घड़ा तो मिट्टी से कल्पित है वास्तव में सत्यता तत्व स्वरूप मृत्तिका ही है।

श्लोक ब्रह्मैवेदं विश्वमित्येव वाणी श्रौती ब्रूते ऽथर्व निष्ठा वरिष्ठा ।
तस्मादेतद ब्रह्म मात्रं हि विश्वं, नाधिष्ठानान्नि स्तरोपि तस्य ॥

अर्थ - यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्म ही है ऐसा अति श्रेष्ठ अथर्व श्रुति का कथन है इसलिये यह विश्व ब्रह्ममात्र ही है क्योंकि अधिष्ठान से अतिरिक्त वस्तु की पृथक सत्ता हुआ ही नहीं करती ।

क्योंकि समाधि तत्व के जानने वाले भगवान श्रीकृष्ण ने भी निश्चित किया है कि न तो मैं ही भूतों में स्थित हूं और न वे मुझ में ही स्थित हैं ।

श्लोक यदि सत्यं भवेद्विश्वं सुषुप्तावुपलभ्यताम् ।
यन्नोपलभ्यते किंचिदतोऽसत्स्वप्न वन्मृषा ॥

अर्थ - यदि विश्व सत्य होता तो सुषुप्ति में भी उसकी प्रतीति होनी चाहिये थी किन्तु उस समय इसकी कुछ भी प्रतीति नहीं होती इसलिये यह स्वप्न के समान असत्य और मिथ्या है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अध्यास निरास

स्वात्मन्येव सदा स्थित्या मनो नश्यति योगिनः ।
वासना नांशमप्येति तस्मात् स्वाध्यासापनयं कुरु ॥

(चित्त शांति योग के लोक ६०) निरन्तर आत्मस्वरूप में ही स्थिति से योगी का मन नष्ट हो जाता है, और उसकी वासनाओं का भी क्षय हो जाता है इससे अपने अध्यास को दूर करो- अध्यास = आत्मा को अनात्म देखना

तमो ज्ञाभ्यां रजः सत्त्वात् सत्त्वं शुद्धेन नश्यति ।
तस्मात् सत्त्वमवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु ॥

रजोगुण को सत्त्वगुण से, सत्त्वगुण से रजोगुण रहित सत्त्व से सत्त्वगुण का नाश होता है इसलिये शुद्ध सत्त्व का आश्रय लेके अपने अध्यास का त्याग करो ॥

प्रारब्धं पुष्यति वपुरिति निश्चित्य निश्चलः ।
धैर्यमात्मन्यवष्टभ्य स्वाध्यासापनयं कुरु ॥

अर्थ- प्रारब्ध शरीर का पोषण करता है ऐसा निश्चय कर निश्चल भाव से धैर्य धारण कर के यत्नपूर्वक अध्यास को छोड़ना चाहिये ।

मैं जीव नहीं हूं पर ब्रह्म हूं इस प्रकार अपने में जीव भाव का निषेध करते हुए वासना त्याग के बल से प्रत्यगात्मा में अध्यास का त्याग करो ।

श्लोक- निद्रायां लोकवार्तायां शब्दादेरपि विस्मृतेः ।
क्वचिन्नावसरं दत्त्वा चिन्तयात्मानमात्मनि ॥

निद्रा लौकिक बात चीत अथवा शब्दादि किसी से भी आत्म विस्मृति को अवसर न देकर अर्थात किसी भी कारण से स्वरूपानुसन्धान को न भूलकर अपने अन्तःकरण में निरन्तर आत्मा का चिन्तन करो । (कंठस्थ करो)

जब तक मन ना शुद्ध हो, मिटे नहीं भवरोग । निर्मल मन होजाय जब, तभी होय शिव योग ।
तभी होय शिव योग- होय मन राग द्वेष से खाली, भोग रोग सम त्याग स्वस्थ हो शिव अनुरागी । भोला मन का शुद्ध हो देह की चिन्ता कभी तब तक ना हो - शांति शुद्ध मन ना हो जब तक ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक = यावत्स्यात्स्वस्य सम्बन्धोऽहंकारेण दुरात्मना ।
तावन्न लेश मात्रापि मुक्ति वार्ता विलक्षणा ॥

अर्थ = जब तक इस दुरात्मा अहंकार से आत्मा का सम्बंध है, तब तक मुक्ति
— जैसी विलक्षण बात की लेशमात्र भी आशा न रखना चाहिये ॥

श्लोक = अहंकार ग्रहान्मुक्तः स्वरूप मुपपद्यते ।
चन्द्रवद्विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयं प्रभः ॥

अर्थ = अहंकार रूपी ग्रह (राहु) से मुक्त होजाने पर चन्द्रमा के समान
आत्मा निर्मल पूर्ण एवं नित्यानन्दस्वरूप स्वयं प्रकाश होकर
अपने स्वरूप को प्राप्त होजाता है ॥

यो वा पुरे सोऽहमिति प्रतीतो. बुद्ध्या विकल्पैः प्रसृतमसीति मूढया ।
तस्यैव निःशेषतया विनाशो. ब्रह्मात्मभावः प्रतिबन्धशून्यः ॥

अर्थ = अज्ञान से अत्यन्त मोहित बुद्धि की कल्पना से इस शरीर में जो मैं
मैं हूं ऐसी प्रतीति होती है, उसका सर्वथा नष्ट होजाने पर ब्रह्म में
निर्विघ्न आत्मभाव होजाता है ॥

ब्रह्मानन्द रूपी परम धन को अहंकार रूप महा भयंकर सर्प ने अपने सत-
रज, तम रूप तीन प्रचण्ड मस्तकों से लपेट कर छिपा रक्खा है जब
विवेकी पुरुष अनुभव ज्ञान रूप चमकते हुए महा खड्ग से
इनमें तीनों मस्तकों को काट कर इस सर्प का नाश कर देता है, तभी वह इस
परम आनन्ददायिनी ब्रह्मप्राप्ति का भोग प्राप्त करता है ॥

जब तक हृदय में विष का थोड़ा सा भी दोष रहता है तब तक वह उसे
निरोग होने नहीं देता । उसी प्रकार योगी की मुक्ति के मार्ग में
अहंकार का सूक्ष्म चित्त लेश भी भारी प्रतिबन्धक होता है ॥

श्लोक : अहमोऽत्यन्त निवृत्या तत्फलानां विकल्प संहत्या ।
प्रत्यक्तत्त्व विवेकादयमहमस्मीति विन्दते तत्त्वम् ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ:- अहंकारकी निःशेष निवृत्तिसे उससे उत्पन्न हुए नाना प्रकारके विकल्पोंका नाश होजानेपर आत्मतत्त्वका ज्ञानरूप होजानेसे यह आत्मा ही मैं हूं. ऐसा तत्त्वबोध प्रसिद्ध होता है.

इसलिये हे विद्वन्! भोजन करनेवाले पुरुषके गले में कांटेके समान खटकनेवाले इस अहंकार रूप अपने शत्रुको विज्ञानरूप महाखड्गसे मारकर छेदकर आत्मासम्बन्धी सुखको सर्वदा भोगो।

यह प्रबल अहंकार जड़ मूलसे नष्ट करदिया जानेपर भी यदि एक क्षण मात्रको चित्तका समाधि प्राप्त करले तो पुनः प्रगट होकर लेहड़ों उत्पात खड़े कर देता है. जैसे मेघ वर्षाकालमें वायुसे संयुक्त हुआ मेघ।

हेतु:- वासना वृद्धिः कार्यं. कार्यवृद्ध्या च वासना।
वर्धते सर्वथा पुंसः संसारो न निवर्तते॥

वासनाके बढ़नेसे कार्य बढ़ता है और कार्यसे बढ़नेसे वासना बढ़ती है. इसप्रकार मनुष्यका संसार बन्धन विच्छेद नहीं छूटता।

इसीलिये संसार बन्धनको काटनेकेलिये मुनि इन दोनोंका नाश करे. विषयोंकी चिन्ता और वासना क्रिया इनसेही वासनाकी वृद्धि होती है इन तीनोंके क्षयका उपक्रम अवस्था में तदाभव जगत् सम और स्वप्न को ब्रह्म मात्र देखता है. इस प्रबल भ्रम वासनाके दृढ़ होजानेपर इसकी गोंदालभट होजाती है।

जिसप्रकार सूर्यकी प्रभासे उदय होतेही जैसे अत्यन्त घोर अंधेरी रातका भी सर्वथा नाश होजाता है, उसीप्रकार मूल वासनाकी स्मृतिका विलय होनेपर यह अहंकारादिकी वासनाएं क्षीण होजाती हैं.

विषयमें लगेहुए चित्तसे पुण्यका चिन्तन करता है फिर निरन्तर चिन्तन करनेसे उनकी कामना जागृत होती है और कामनासे विषयोंमें प्रवृत्ति होजाती है।

फिर- विषयोंकी प्रवृत्तिसे मनुष्य आत्मस्वरूपसे गिर जाता है और एवं स्वरूपसे गिरकर उलझा निरन्तर अधःपतन होता रहता है कि उत्थान नहीं होता।

इसलिये सम्पूर्ण अनर्थोंके कारणरूप संकल्पको त्याग देना चाहिये इसलिये आत्म

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बाह्ये निरूढे मनसः प्रसन्नता, मनः प्रसादे परमात्म दर्शनम्।
तस्मिन्सुदृष्टे भवबन्धनाशो, बाह्यो निषेधः पदवी विमुक्तेः॥

अर्थ = बाह्य पदार्थों का निषेध कर देने पर मन में आनन्द होता है। आत्मा में आनन्द का उद्रेक होने पर परमात्मा का साक्षात्कार होता है। और उसका साक्षात्कार होने पर संसार बन्धन का नाश हो जाता है। इस प्रकार बाह्य वस्तुओं का निषेध ही मुक्ति का मार्ग है।

/ अहंकार से लेकर देह तक प्रकृति के जितने विकार अथवा विषय हैं वे सभी क्षण क्षण में बदलने वाले होने से असत्य हैं आत्मा तो इन सभी से भिन्न एक ही रस वाला है।

समाधि निरूपण /

अज्ञान हृदय ग्रन्थेर्निःशेष विलयस्तदा।
समाधिना ऽविकल्पेन, यदाद्वैतात्म दर्शनम्॥

अज्ञान रूप हृदय की ग्रंथि का सर्वथा नाश तो तभी होता है जब निर्विकल्प समाधि द्वारा अद्वैत आत्म स्वरूप का साक्षात्कार किया जाता है।

/ अविद्या और निर्विशेष परमात्मा में बुद्धि के दोष से 'तू, मैं, यह' ऐसी कल्पना होती है। और यही समूची विकल्प समाधि में विघ्न रूप से स्फुरित होता है। किन्तु तत्त्व वस्तु का साक्षात्कार होने पर सब लीन हो जाता है।

/ योगी पुरुष चित्त की शान्ति, इन्द्रियों को विषयों से उपरति और समाधि से युक्त होकर समाधि का निरन्तर अभ्यास करता हुआ अपने सच्चिदात्म भाव का अनुभव करता है। और उसके द्वारा अविद्या रूप अन्धकार से उत्पन्न हुए समस्त विकल्पों का भलीभांति ध्वंस करके नित्य और निर्विकल्प ब्रह्मानन्द पूर्वक ब्रह्म का दर्शन करता है।

समाहितायै प्रविलाप्य बाह्यं, श्रोत्रादि चेतः स्वमहं चिदात्मनि।
त एव मुक्ता भव पाश बन्धैर्नान्ये तु पोद्दाम कथाभिधायिनः॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो लोग श्रोत्रादि इन्द्रियों, चित्त और अहंकार आदि बाह्य वस्तुओं को आत्मा में लीन करके समाधि में स्थित होते हैं वे ही संसार बन्धन से मुक्त हैं जो केवल परोक्ष ब्रह्मज्ञान की बातें बनाते रहते हैं वे कभी मुक्त नहीं हो सकते।

उपाधिभेदात्स्वयमेव भिद्यते चोपाध्यपोहः स्वयमेव केवलः।
तस्माद्धि पाधेर्विलयाय विद्वान्वसेत्सदा कल्पसमाधिनिष्ठया॥

अर्थ—उपाधि के भेद से ही आत्मा में भेद की प्रतीति होती है और उपाधि का लय होजाने पर केवल ब्रह्म ही रह जाता है इसलिये ये उपाधि का लय करने के लिये विचारवान पुरुष सदा निर्विकल्प समाधि में स्थित रहे।

श्लोक सदात्मनीक्षेन्नरो यतीते मूढात्मलोकं निकृष्टया।
कीटो भ्रमरं ध्यायन्भ्रमरत्वाय कल्पते॥

यदि चित्तवृत्ति निरन्तर सत्स्वरूप ब्रह्म में स्थित रहने से मनुष्य ब्रह्मरूप हो जाता है तो जो मनुष्य भ्रमर का भय पूर्वक ध्यान करता है वह कीड़ा भ्रमर रूप हो जाता है इसी प्रकार मायी प्रेत का ध्यान करते करते प्रेत हो जाता है।

परमात्मा नित्य अत्यन्त सूक्ष्म है उसे स्थूल दृष्टि से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता इसलिये मन रूपी कोई उसे समाधि द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म वृत्ति से जानना चाहिये।

जिस प्रकार आग में पुरुषार्थ के द्वारा शोधा हुआ सोना सम्पूर्ण मल को त्याग कर अपने स्वभाव के कारण से प्रकाशता है उसी प्रकार मन ध्यान के द्वारा सत्व रज तम रूप मल को त्याग कर आत्मभाव को प्राप्त होजाता है।

जिस प्रकार मनुष्य दिन के निरन्तर आभास से पतंगे के मन में लीन होजाता है उसी प्रकार मुमुक्षु आठों पहर ब्रह्मानन्द रस का अनुभव करने वाली बहु निर्विकल्प समाधि में स्थित हो सिद्ध होजाता है।

श्लोक अत्यन्त वैराग्यवतः समाधिः समाहितस्यैव दृढ़ प्रबोधः।
प्रबुद्धतत्त्वस्य हि बन्धमुक्तिर्मुक्तात्मनो नित्यसुखानुभूतिः॥

अत्यन्त वैराग्यवान को ही समाधि लाभ होता है समाधिस्थ पुरुष को दृढ़ बोध होता है तथा दृढ़ बोध वाले की संसार बन्धन छूट जाते हैं जो संसार बन्धन से छूट गया वही नित्य तत्त्व अनुभव होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(आत्म ज्ञान का फल)

सं सिद्धस्य फलं त्वेतज्जीवन्मुक्तस्य योगिनः।
बहिरन्तः सदानन्द रसास्वादन मात्मनि ॥

आत्मज्ञान से सम्यक् सिद्धि प्राप्त किये हुए जीवन मुक्त योगी की यही फल मिलता है कि अपने आत्मा के नित्यानन्द रस का बाहर भीतर निरन्तर आस्वादन किया करे।

अथ बैराग्यस्य फलं बोधो बोधस्योपरतिः फलम्।
स्वानन्दानुभवाच्छान्तिरेषैवोपरतेः फलम् ॥

बैराग्य का फल बोध है, और बोध का फल उपरति (विषयों से उदासीनता) है तथा उपरति का फल यही है कि आत्मानन्द के अनुभव से चित्त शांत हो जाय।

श्लोक. अतीतानुसन्धानं भविष्य दविचारणम्।
औदासीन्य मपि प्राप्ते जीवन मुक्तस्य लक्षणम् ॥

अर्थ = बीती हुई बात को याद न करना भविष्य की चिन्ता न करना और वर्तमान में प्राप्त हुए सुख दुखादि में उदासीनता - यह जीवन्मुक्त का लक्षण है।

श्लोक. प्रारब्धं बलवत्तरं खलु विदां भोगेन तस्य क्षयः।
सम्यग्ज्ञान हुताशनेन विलयः प्राक्संचिता गामिनाम् ॥
ब्रह्मात्मैक्य मवेक्ष्य तन्मयतया ये सर्वदा संस्थिता -
स्तेषां तत्त्रितयं न हि क्वचिदपि ब्रह्मैव ते निर्गुणम् ॥

अर्थ = विद्वान का प्रारब्ध कर्म अवश्य ही बलवान होता है उसका क्षय भोग से ही होता है उसके अतिरिक्त पूर्व संचित और आगामी का तो तत्त्वज्ञान रूप अग्नि से क्षय हो जाता है, कि नु जो ब्रह्म और आत्मा की एकता को जानकर सदा उसी भाव में स्थित रहते हैं, उनकी दृष्टि में तो वे (प्रारब्ध, संचित, और आगामी) तीनों भी नहीं हैं - कभी कहीं नहीं थे वह तो साक्षात् निर्गुण ब्रह्म ही है।

श्लोक. उपाधि तादात्म्य विहीन केवल ब्रह्मात्म नैवात्मनि तिष्ठतो मुनेः।
प्रारब्ध सद्भाव कथा न युक्ता स्वप्नार्थ सम्बन्ध कथेव जागृतः ॥

अर्थ = जो मुनि सब उपाधि के सम्बन्ध को छोड़ कर केवल ब्रह्मात्म भाव से अपने स्वरूप में स्थित रहता है उसके प्रारब्ध की स्थिति की बात स्वप्न में देखे हुए पदार्थों को जागृत [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक: कर्मणा निर्मितो देहः प्रारब्धं तत्य कल्प्यताम् ।
नाना देहात्म मनो युक्तो नैवात्मा कर्म निर्मितः ॥
देह कर्मों से बना हुआ है अतः प्रारब्ध भी उसी का समझना चाहिये
अनादि आत्मा को प्रारब्ध मानना ठीक नहीं क्योंकि आत्मा कर्मों से
बना हुआ नहीं है।

प्रारब्धं सिध्यति तदा यदा देहात्मना स्थितिः ।
देहात्म भावो नैवेष्टः प्रारब्धं त्यजता मतः ॥
प्रारब्ध को तभी सिद्ध होता है जब तक देह में आत्म भावना रहती है
और देहात्म भाव मुमुक्षु के लिये इष्ट नहीं है। इसलिये प्रारब्ध की अवस्था
को छोड़ना चाहिये।

श्लोक: शरीरस्यापि प्रारब्ध कल्पना भ्रान्तिरेवहि ।
अध्यस्तस्य कुतः सत्वं न सत्वस्य कुतोजनिः ।
अजा तस्य कुतो नाशः प्रारब्धं मस्तु कुतः ॥
वास्तव में तो शरीर का प्रारब्ध मानना भ्रान्ति ही है क्योंकि वह तो स्वयं
अध्यस्त (भ्रम से कल्पित) है और अध्यस्त वस्तु की सत्ता ही कहां -
जानी है तथा जिसकी सत्ता ही नहीं उसका जन्म भी कहां से आया और जिसका
जन्म ही नहीं उसका नाश भी कैसे होसकता है इसलिये जो स्वयं सत्ता शून्य
है उस (शरीर) का भी प्रारब्ध कैसे होसकता है।

(नानात्व - बोध)

श्लोक - परिपूर्ण मनाद्यन्त मप्रमेय मविक्रियम् ।
एक मेवाद्वयं ब्रह्म - नेह नानास्ति किंचन ॥
वास्तव में एक अधिष्ठान अनादि अनंत अप्रमेय और अविकारी ब्रह्म है। उसके अतिरिक्त
और कोई नाना पदार्थ नहीं है।

श्लोक - निर्गुणं निष्कलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं निरंजनम् ।
एकमेवाद्वयं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन ॥
जो गुण और कला से रहित है सूक्ष्म निर्विकल्प और निर्मल है वह एक अद्वितीय
ब्रह्म ही सत्य है और नाना पदार्थ कुछ भी नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्लोक - निस्तरागा निष्परास्त्र भोगाः शान्ताः कृतान्ता यतयो महान्तः ।
विहाय तत्त्वं परमेतदन्ते प्राप्ताः परां निर्वृतिमात्मयोगात् ॥
जिनका किसी भी वस्तु में राग नहीं है और भोग का भी सर्वथा अन्त हो गया है तथा जिनका चित्त शान्त एवं द्वन्द्वों से रहित है वे महात्मा सन्यासी जिन्होंने इस परम तत्त्व को जानकर अन्त में अध्यात्मयोग द्वारा परम शांति को प्राप्त हुए हैं ।

श्लोक - समाधिनाऽनाद्य विचेष्टलात्मना, प्रशान्तमन्तर्वदनं गुहाशयम् ।
निःसंशयं सम्यगवेक्षितं सदा श्रुतः पदार्थो न पुनर्विकल्प्यते ॥
अर्थ - समाधि द्वारा भली प्रकार निश्चय हुए चित्त और विकल्प रहित ज्ञान से जो तत्त्व देखा जाता है तो उसके विषय में फिर कोई संशय नहीं होता ।
अपने अज्ञानरूप मन्थन का संसर्ग छूट जाने से जो ज्ञानानन्द स्वरूप आत्मा की प्राप्ति होती है उसमें शास्त्र युक्ति गुरुवाक्य और अनुभव प्रमाण है ।

श्लोक - विलक्षणं यथा ध्यानं लीयते भानु तेजसि ।
तथैव सकलं दृश्यं ब्रह्मणि प्रविलीयते ॥
जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर उससे विपरीत रात्रि का अन्धेरा उसमें लीन हो जाता है वैसे ही समस्त दृश्य प्रपंच ज्ञान होने पर ब्रह्म में लीन हो जाता है ।

इतः को न्वात्ममूढात्मा यस्तु स्वार्थे प्रमाद्यति ।
दुर्लभं मानुषं देहं प्राप्य तत्रापि पौरुषम् ।
वैदिक धर्म के अनुगत निज निज वर्णाश्रम धर्म के अनुसार नित्य नैमित्तिक कर्मों का आचरण करना - ईश्वराधन करना जो इस शास्त्र के कथन का तात्पर्य उसे ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है ।

श्लोक - आत्मविश्रांति तृप्तेन, निरपेक्षेण गतार्त्तिना ।
अन्तर्मनुभूयेत तत्कथं कस्य कथ्यते ॥
अर्थ - जो पुरुष आत्मस्वरूप के विषय विश्रामरूप अमृत का पान करके तृप्त हुआ है और आशा मात्र निवृत्त हो गई है तथा जिसके भीतर की चीड़ा शांत हो गई है ऐसा ज्ञानी अपने अन्तःकरण में जो अनुभव करता है उसको प्राणी किस प्रकार कह सकता है और उस अनुभव को दूसरा किस प्रकार समझ सकता है ।
दुर्लभ है ।-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लीला ने पूछा हे देवी यह जीव मृतक कैसे होता है और जन्म कैसे लेता है
मेरे बोध की महत्ता के निमित्त फिर कहो। देवी बोली हे लीले! इस
अनन्तर प्राण अपान के निकलने से अन्य यह शरीर रहता है और जब मृतक
होने लगता है, तब प्राण वायु अपने स्थान को त्यागता है और जिस मार्ग
स्थान की नाड़ी से वह निकलता है वह त्यागी हो जाती है जब
पूर्वोक्त शरीर से निकलता है तब प्राण कला दूर पड़ती है और
देहसत्ता जड़ी भूत हो जाती है तब यद्यपि वाले लोग उसे प्रेत करते
हैं लीले! चित्तशक्ति चेतनसत्ता जड़ीभूत हो जाती है और केवल चेतनमात्र
ब्रह्म रहता है। ब्रह्मवेत्ता की त्यों रहती है जो स्थावर जंगम सब जगत
और आकाश, पर्वत, वृक्ष, अग्नि, वायु आदि सब पदार्थों में व्याप्त
वह है और उन सब अन्त में स्थित है। हे लीले! जब मृत्यु मूर्छा होती है
तब प्राण पवन आकाश में लीन होते हैं उत्पत्ति में चेतन्य होती है
और चेतन्य ताम मात्रता होती है हे लीले! तेजोमय प्राण और चेतन्य
हैं सो वासना को लेकर आकाशरूप आकाशरूप स्थित होती है जो
गंधर्व लोक नाम आकाश में स्थित होती है, वहाँ की वासना को लेकर
चेतनता स्थित होती है। हे लीले! उस अपनी वासना के अनुसार उसे देख
स्थान स्थित फिर जगत फुरा आता है, उसी वट देखा काल किया जो
जन्म होता है वासना रहित की मोक्ष होती है
मृत्यु - दो प्रकार की है पापात्मा की और पुण्यात्मा की
पापात्मा का शरीर जबतक मृतक नहीं होता वायु आदि जड़ीभूत होता
जाता है और तब तक पाषाण की नाईं मूर्छा में पड़ा रहता है
पुण्यात्मा की मृत्यु - जब पुण्यात्मा मृतक होता है सुखरूप
से उसे लोक में विद्यमान होते हैं और स्वर्ग में जाता है और भोग
भोगता है। अपनी वासना के अनुसार फिर जन्म लेता है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वेदोंका सार क्या है)

वेदोंका सार थोड़े में बताता हूं: ब्रह्म सत्य है. जगत मिथ्या है. ब्रह्म से जीव भिन्न नहीं है
तेरे प्रश्न का इतना ही उत्तर है। अब इसी बात को विस्तार से समझाता हूं। श्रुति कहती है
हे सौम्य सृष्टि से पहिले एक अद्वितीय सत् ही था उसने इच्छा की प्रजा उत्पन्न करने
के लिये बहुत होजाऊं पीछे उसने आकाश उत्पन्न किया, आकाश से वायु, वायु से तेज,
तेज से जल, जल से पृथ्वी इन पांच सूक्ष्मभूतों से पांच स्थूल भूत उत्पन्न हुए।
स्थूलभूतों से सब सृष्टि की रचना हुई। सब सृष्टि की रचना कर के ईश्वर ने स्वयं जीव रूप से
प्रवेश किया इसलिये सब सृष्टि की उत्पत्ति है।
अब विचारना चाहिये कि जब सत्य से सब की उत्पत्ति हुई है तब सब सत्य ही है।
कारण से कार्य का अभेद होता है, जैसे घटादि पृथ्वी के रूप पृथ्वी रूप हैं
जैसे स्वर्ण के कार्य कुण्डलादि के सुवर्णरूप हैं। जैसे लोहे के कार्य अस्त्रशस्त्र
आदि सब लोहा रूप हैं। इसी प्रकार सत्य का कार्य सत्य से भिन्न नहीं है। सत्य-
रूप ही है।
जाग्रत और स्वप्न में भिन्नता नहीं देखते हमें भी सुषुप्ति में भिन्नता नहीं चलती तब भिन्नता
कहां है तीनों अवस्था में एक ही सत्य है. जगत में पांच प्रकार का भेद जो भासता है वह
भ्रम से भासता है। जीव और ब्रह्म की भिन्नता प्रथम भ्रम है। जीव को कल्पित कहना
भ्रम है। तीनों शरीरों से जीव का संग तीसरा भ्रम है। कारण रूप परमात्मा से भिन्न-
कार्य रूप जगत का सत्य भासना चौथा भ्रम है। और जगत के कारण रूप परमात्मा
में विकार भासना भेदपांचवा भ्रम है। यह पांच प्रकार का भेद वास्तव में नहीं है भ्रम से
सिद्ध हुए। विचार से निवृत्त होजाता है विचार हेतु युक्ति कहते हैं

(१) बिम्ब और प्रतिबिम्ब के दृष्टांत से ब्रह्म और जीव का भेद निवृत्त होजाता है. जैसे आकाश में
बिम्ब रूप सूर्य है और जल में पक्षादि प्रतिबिम्ब रूप दृष्टि है। जल की उपाधि हुई तो जो
सब जल के धर्म हैं वही आकाश के दृष्टि में एक भासते। इसी प्रकार ब्रह्म बिम्ब रूप है और
ब्रह्म की समष्टि अज्ञान और अन्तःकरण में जो प्रतिबिम्ब है उसका नाम दृश्य और जीव है।
समष्टि अज्ञान और अन्तःकरण की उपाधि के नाश से ईश्वर और जीव का भेद
साथ साथ समाप्त होजाता है, यानी दोनों तत्व और जीवत्व का बोध लोप हो जाता है
और जीव ब्रह्म स्वरूप ही है

(२) स्फटिक लाल फूल लगे हुए न तो जीव का कर्ता पना निवृत्त होजाता है, जैसे स्फटिक
स्वाभाविक सफेद है लाल फूल सामने रखने से फूल की लालरंगत स्फटिक में भासती है
वैसी अन्तःकरण आदि के तादात्म्य से जीव में भासता है यानी स्वभाव से जीव अकर्ता है अन्तःकरण की उपाधि से जीव में कर्तापना
प्रतीत होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(5) घट. महाकाश से देखनेसे जीव का संगीपना मानेभोलापना निवृत्त होजाता है। जैसे ~~[illegible]~~ आकाश असंगतोनेपर भी घट अथवा मठ की उपाधि से घटाकाश मठाकाश कहलाताहै, वस्तुतः आकाश निर्लेपहै ऐसेही व्यष्टि और समष्टि अज्ञानसे असंग ~~[illegible]~~ ब्रह्म जीव अथवा ईश्वर कहलाताहै नहींतो वस्तुतः ब्रह्म असंग ही है।

(6) रज्जु और सर्प के दृष्टान्तसे कारणरूप ब्रह्मसे भिन्नजगतके सत्यपने का भ्रम निवृत्तहोजाताहै. जैसे कि मंद अंधेरेमे पड़ीहुई रस्सी भ्रमसे सर्प भासती है ऐसेही अनादि अविद्याके कारण नामरूप कल्पित जगत सत्य भासताहै. नामरूप क्षणक्षणमें नष्ट होनेवाले तोनेकेभी ब्रह्मकी सत्ता लेके सत्यसे प्रतीत होतेहैं। जैसे कोई बंगाली मनुष्य हिंदी शब्दोंमानसे वस्तुओंका लेके रहीकी बजारमेंजाताहै और वही सन्मान पाताहै ऐसेही ब्रह्मकी सत्तालेके असत्यमाया भी जगतरूपसे सत्य भासतीहै।

(7) कनक की कुंडलके देखनेसे विकारत्व का भ्रम दूर होजाताहै जैसे स्वर्ण का अनेक प्रकारके आभूषण बनाताहै परन्तु परमार्थसे स्वर्ण सदृश ही देखताहै। ऐसेही निर्गुण ब्रह्म नामरूप जगतमें अनेक आकार भिन्नता देखता हुआभी सबमें ब्रह्म ओतप्रोत देखताहै. "अथवा जैसे घटादिक विकार परमार्थसे दृष्टिसे ~~[illegible]~~ मृत्तिका रूप होते ऐसेही जगतभी परमार्थरूपसे नीरूपही है

सांख्य दर्शनवाले कहते हैं. जो जैसेसे पैदा होताहै वैसीही उसीमें रचना हुआ मानाजाताहै जैसे कंकण कुंडल आदि सब सोनेके होनेसे स्वर्णही है इसलिये जीव ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है इससे सब संसार ब्रह्मरूपही है

श्लोक अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं याति नास्त्यत्र संशयः॥ 8 गीता

अर्थ जो अन्तकालमें मुझको स्मरणकरताहुआ प्राण छोड़ता है. मेरेभावको प्राप्तहोताहै इसमें सन्देह नहीं. सांख्य-मत ऐसा कहते हैं।

तात्पर्य यह है कि जीवित अवस्थामें तीस कि उपाधि द्वारा चित्तको जबके स्वरूप स्थितको प्राप्त न होसके मुक्ति होवेहै. मरनेसे तत्काल ही ये सब उपाधि मुक्त होजाती है. और अन्तकालमें भी वासना होनेसे जन्म होनाहै ऐसे युक्तिद्वारा खण्डन करते हैं. अन्तकालमें मनुष्य होनेसे तत्काल मुक्ति हो. ऐसा सांख्यसिद्धान्त है. जीवन्मुक्त। जो जीतेजी मुक्त हुआवही मुक्त है मरनेके पीछे मुक्त होनेवाला जीवन्मुक्त नहीं कहते।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्थात् जो महामति पुरुष को त्याग देते हैं। विषय वासना को त्याग कर ज्ञान से युक्त होते हैं वह मुक्त पुरुष कहलाते हैं।

शास्त्र कहता है — हृदयात्संपरित्यज्य सर्व मेक मतामतेः।
यास्तीह्यतिगतव्यग्रः समुक्त पमेस्वहं ॥ अर्थ ऊपर लिखे

श्लोक - जीवः शिवः सर्वमेव भूते भूते व्यवस्थितः।
एवं मेनामि पश्यन्ते जीवन्मुक्तः स उच्यते॥

अर्थात् जीवमात्र में शिव तत्व है ओ वह तत्व मेरे में व्याप्त है इस प्रकार जो देखता है वही जीवन्मुक्त है अर्थात् जिसने कामादि रिपुओं को जय कर हृदय शोधन कर लिया है और जीवित अवस्था में सब व्यापी परमात्मा को देख लेते वह जीवन मुक्त। मनुष्य शरीर द्वारा ही व्याख्यान से मुक्ति मिल सकती है अन्यथा नहीं। कथा तीर्थ भी मिट्टी अर्थात् मुक्ति नहीं मिल सकती।

श्लोक - चेदशक्तो वोद्धुमुष्मान् शरीरस्थ विस्रसेः ततः स्वर्गेषु लोकेषु
शरीरत्वाय कल्पते। अर्थात् औरजन्म में शरीर देने के लिये आत्मा को जानने में समर्थ होजाय तो वह मोक्ष पाता है नहीं तो अन्य कृमि प्राणियों के समान शरीर धारण करता है।

श्रुति कहती है — न तस्य प्राणा उत्क्रामंत्यत्रैव समवलीयते। ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति॥
अर्थात: ब्रह्मवेत्ता पुरुष के प्राण इस शरीर में ही भाग्य ज्ञान चैतन्य मेल खाते हैं और तत्व वेत्ता ब्रह्मरूप होकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है अर्थात् मैं, मम, अहंभाव त्यागदेता है।

श्लोक - अग्निहोत्रंच वेदाश्च राक्षसानां गृहे गृहे।
दया सत्यंच शौचंच राक्षसानां न विद्यते॥

अर्थात् - अग्निहोत्र और वेद राक्षसों के घर घर होते हैं परन्तु दया सत्य और पवित्रता वहां नहीं होती। ऐसे विचित्र अर्थात् अनोखे ढंग की ऐसी प्रकृति वाले मनुष्य राक्षस कहलाते हैं। अन्त में दया सत्यता और पवित्रता ओ कि इस मनुष्य में होती है। दया = कल्पवृक्ष।

दयाभक्ति का जीव है। दया का मूल चरण है। सत्य ही प्रलय में महत्व दयामिला तो व सत्य ही प्रलय में ही ईश्वर विराजते। जैसे स्व-स्वरूप में ही ईश्वर विराजते उसी प्रकार पवित्र उपाधि में ही ईश्वर का प्रतिबिम्ब

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जो गुणातीत और ज्ञानातीत है उसका कैसे जाना जा सकता है जो जानते जाते हैं वे तद्रूप होजाते हैं, जैसे कोई बर्फ का पुतला किसी नदी का थाह लेने जाये तो तद्रूप होजाता है अर्थात एक रूप होजाता है, फिर कौन कहे। श्रुति भी यही कहती है "तद्धोयो देवानां प्रत्यबुध्यत स एव तदभवत्" अर्थात देवताओं में से जिसने ब्रह्म को जाना वह ब्रह्मरूप होगया। ज्ञान होते ही अदृश्य होना पड़ता है तो ज्ञानातीत के विषय में क्या कहना इस लक्ष्य को साधक आपही अनुभव कर सकता है पाठक को समझाया नहीं जा सकता। जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्था का अनुभव जाग्रत अवस्था में नहीं कराया जाता उसी प्रकार साधक को ब्रह्म होजाने का अनुभव दूसरे को नहीं कराया जा सकता।

श्लोक — इदं तीर्थ मिदं तीर्थं भ्रमंति तामसा जनाः।
आत्म तीर्थं न जानंति कथं मोक्षः वदस्व प्रिये॥ — कपिलगीता

महादेव पार्वती से कहते हैं कि प्रिये यह तीर्थ है वह तीर्थ है ऐसे अज्ञानी तामसजन ब्रह्मतीर्थ को नहीं जानते तो मोक्ष कैसे?

प्रश्न करने तीन प्रकार के होते हैं। वाद, जल्प और वितंडा॥

वाद — तत्त्व निरूपणार्थ कथनं।

जल्पवाद — दूसरे को कथन दोन मानकर अपने कथन को दृढ़ करना।

वितण्डा — केवल दूसरे के मत को खंडन करने के लिये कटिबद्ध होना।

"नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।" ३५ श्लोक ६ मुण्डक

अर्थात यह आत्मा न वेद पढ़ने से मिलता है न ग्रंथों के अर्थों को धारण करने की शक्ति से और न शास्त्रों के ज्ञान से पाया जाता है, भगवान शंकराचार्य जी ने इसी बात को विवेक चूड़ामणि में कहा है

अज्ञान सर्प दष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं बिना।
किमु वेदश्चशास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः॥

अर्थात अज्ञानरूपी महासर्प के डसे मनुष्यों को ब्रह्मज्ञानरूपी एक औषध जानते हुए भी अन्य वेद शास्त्र मंत्र यंत्र इनसे कुछ नहीं होता।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना । 23/24 गी.
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥
कोई ध्यानयोगी से अपने में आत्मा को देखते हैं. कोई सांख्ययोग द्वारा और कोई कर्मयोग से आत्मा का साक्षात्कार करते हैं।

ध्यानयोग. शुचौ देशे च संस्थाप्य स्थिरमासनम् । शुचि स्थान में स्थिर
इन क्रियाओं के अनुसार मोक्ष-मार्ग में एक से एक इन्द्रियों को
मन को प्रत्यक् आत्मा में जोड़ कर अपनी अन्तरात्मा द्वारा परमात्मा
को देखते हैं ऐसे ध्यान योग का वर्णन किया है। अतः
भगवान वासुदेवजी के कहने से हमें धैर्य धैर्य मेव ध्यानयोग से
अर्थात - तीनों लोक अवस्थाओं में नित्य कूटस्थ अक्षर को एकरूप
मैं कुछ करता भी नहीं भोक्ता भी नहीं इस रूप अपने को
प्रकृति के गुणों से वर्तित जानकर निष्क्रिय आत्मा को अवस्थित
करना चाहिये।

अभियोग अर्थात मत्कर्मकृत् (11-12) आदि श्लोकों में कहा
परमेश्वर के प्रीत्यर्थ कर्म करना मोक्षदायक होता है। इस
कर्मयोग से शुद्ध होने से तत्त्वज्ञान होकर ज्ञाननिष्ठा होती है। इस
आत्मा का अनुभव होता है इस मोक्षरूप फलदायक कर्मयोग को कहते हैं
अर्थात — जो कुछ दो उसमें ईश्वर को जानकर दो।

तीन काश हैं.
भूताकाश. चित्ताकाश और चिदाकाश हैं वे तीनों अनन्त हैं
परन्तु भूताभ्रकाश - चित्ताकाश से चिदाकाश
आश्रित रहते हैं ॥
महावाक्य के तत्पदका अर्थ वह ईश्वर है त्वम्पद का अर्थ तू जीवात्मा और आत्मा
दोनों की एकता बताना अर्थात वह ईश्वर तू जीवात्मा ऐसा पदका अर्थ है और
अखण्डभर्म अभिमान रहने वाले का नाम ईश्वर है मैं हूँ ऐसा अभिमान है
वाला का नाम जीवात्मा है ऐसा जीवात्मा हठसे माना जाता है नहीं तो ईश्वर
अखण्ड में अभिमान नहीं करता जीवात्मा अपने अभिमान को ईश्वर में मानता है
याने जैसे मैं हूँ में अभिमान करता है. ऐसा ईश्वर अखण्ड में अभिमान नहीं है तथापि
विचार करने से स्पष्ट होगा. हे परन्तु यदि ऐसा नहीं है ईश्वर अखण्ड में अभिमान
नहीं करता तो दत्तात्रेयजी ईश्वर कहा

मुक्त हो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तारा और राम की बातचीत

तारा — हे नाथ! जबतक काया के साथ अन्तःकरण और जीवात्मा-चेतन — संयुक्त है तो सुख-दुःख आदि का सम्बन्ध होता है, यह तो है।

राम — हे प्रिये! जबतक देह और इन्द्रियों से अहंकार आदि का सम्बन्ध रहता है तबतक आत्मा और अनात्मा के भेद से रहित एकरूप सुख दुःखादि के भोग रूप संसार से सम्बन्ध रहता है। यह संसार वास्तविक नहीं है, अविद्या से आत्मा में मिथ्या ही भासित होता है। तो भी ज्ञान के उदय हुआ बिना स्वयं नष्ट नहीं होता।

संसार-सागर से पार होने की युक्ति — [illegible] इसलिए आत्मा से आत्मा को जीत। समस्त वासनाओं और मनसे रहित रह। पाप रहित रहना। किसी प्रकार की शंका मत कर और सब अंगों में हित रख। अन्त्य को आत्मा से देख। यह बड़ा है — आत्मा इससे छोटा है।

स्थूल देह इन्द्रिय प्राण मन बुद्धि अहंकार और जीवात्मा इनसे बड़ी आत्मा है। इनसे में इसका क्रम से सूक्ष्म व्यापक और प्रबल है। याने देह से इन्द्रियां सूक्ष्म, व्यापक और प्रबल है। इन्द्रियों से प्राण सूक्ष्म व्यापक प्रबल है। प्राण से मन सूक्ष्म व्यापक और प्रबल है। मन से बुद्धि सूक्ष्म व्यापक और प्रबल है। और अहंकार से जीवात्मा सूक्ष्म व्यापक और प्रबल है। इसको इन्द्रियों से वश कर, इन्द्रियों को प्राण से, प्राण को मन से, मन को बुद्धि से, बुद्धि को जीवात्मा से नष्ट कर, इस प्रकार आत्मा से आत्मा को जीत। ऐसा करने से जीवात्मा अपने वास्तविक स्वरूप को जीत जाएगा। अब इसकी और विस्तार से व्याख्या करता हूँ।

प्राण से मन श्रेष्ठ है और मन से प्राण श्रेष्ठ। इससे इन्द्रियों से बुद्धि श्रेष्ठ है।

तारा — इन्द्रियों से प्राण श्रेष्ठ है यह कैसे? क्योंकि इन्द्रियां प्राण के आधीन हैं। प्राण बिना इन्द्रियां नहीं रह सकती और कोई क्रिया भी नहीं कर सकती। प्राण से मन श्रेष्ठ अथवा मन से प्राण श्रेष्ठ है। मन ज्ञानशक्ति है, प्राण क्रियाशक्ति है। मन और प्राण दोनों ही साथ रहते हैं। मन के बिना प्राण और प्राण के बिना मन नहीं रहता। इसलिए मन अस्पष्ट और प्राण स्पष्ट रहता है। इसी से बुद्धि मन स्पष्ट और प्राण अस्पष्ट होता है। तो भी दोनों साथ ही हैं। जहां क्रिया शक्ति प्रबल है वहां प्राण को श्रेष्ठ कहते हैं और जहां ज्ञान की प्रधानता है वहां मन को श्रेष्ठ कहते हैं। इसी प्रकार प्राण और मन [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

/ हाँ; देह की क्रियाओं को देह. मौर और इन्द्रियों को समझाकर इनके जीते, प्राणकी क्रिया से प्राणायाम से अंतःकरण से यानेसे इन्द्रियों को वशमें करे।
इच्छा और मनकी चेष्टाओं को वैराग्य से और शान्ति से बुद्धि को प्रकृति को विवेक विज्ञानसे और तीव्र मोक्षकी इच्छासे, और अहंकारकी प्रवृत्तिको ब्रह्ममें आत्मभावके होने में ब्रह्म है इस भावना से जीतना चाहिये इसप्रकार विचारसे देखा जाता है और यह बराबर जीतने में मिलता है।

आत्मा ही सारथी

हे मन! संसार में कुछ सार नहीं है संसार के सभी कार्य असार हैं इनमें कितना सुख दुख भोगा है। तेरी आशा पूरी नहीं हुई, इस आशा के पीछे जन्म मृत्यु हुआ, तब दुख देने वाले पदार्थों की क्यों इच्छा करता है। सुख देने वाले पदार्थों की खोज कर। सुख देने वाला तेरा आत्मा ही है। यानि तुझमें ही सुख है अन्य में सुख नहीं। इच्छा करने से ये अपने सुख को खो देते हैं यानि इच्छा ने तेरे सुखस्वरूप आत्मा को ढंक लिया है। इसलिये समस्त इच्छाओं को छोड़ दे अपने आपमें रहो आपमें क्रीडा करो आपही में तृप्त हो रहो, बाहर मत भटको अपने में ही खोजो तब तुझे सुख की प्राप्ति होगी।
हे मन! ये पांचों इन्द्रियां तेरी शत्रु हैं इनके कारण से तू महान होकर भी छोटा सा क्षुद्र होकर भी तुच्छ बन गया है। स्वतंत्र होकर भी परतंत्र बन गया है परंतु इनको देकर भी सुख नहीं मिलता। इसलिये इन इन्द्रियों के सुख भोगों को त्याग मोहित मत हो और अपने हृदय में नित्य शुद्ध शुद्ध मुक्त आनन्द स्वरूप आत्मा में चित्त वृत्ति जोड़ दे।
शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये ही फंसाने वाली हैं।
गज, अली मीन पतंग मृग एक २ दोष विनाश। जिनके ये पांचों दोष उनका कौन रक्षक।
इन्द्रियों के विषयों से सावधान रहो। मन में तीव्र मोक्ष की इच्छा से इनका नाश हो जाता है इनसे मैत्री हो तो मुख्यतः ये मृत्यु रूप होती जाती हैं। और ये इन्द्रियां धीरे धीरे स्वभाव से ही हन्यते हैं। अतः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शब्द. स्पर्श. रूप रस गन्ध। इनपांचोंविषयोंमे सुखनहीं। हरएकइन्द्रियां
अपनेअपनेको नाकर्षी चलती है. इसलिये इनपांचोंठगनिर्योंके वशहोकर
मनुष्यारामतादि। वहिर्मुख आत्माको ज्ञाननहीं होता. इसलियें इंद्रियोंको
वशिकरनेसे सर्वदाअन्तर्मुखी रख, यदि इन्द्रियो के विषयोंमें भ्रमणकरेगा
तो आत्मज्ञान नहीं होगा इसलिये स्मरणध्यान छोड़ब्रह्माकृतिका
अभ्यासकर ब्रह्माकृति होनेसेअनेकासनाएं नष्ट होजातीहैं और अप्रतिबद्ध
योग इसीनहोनेवाली ज्ञानवृत्ति होतीहै दृश्यभीतरविषयोंचिन्तन
नहीं करनेवाले और सदा ब्रह्माकृति रखनेवाले को ब्रह्मकी प्राप्ति
होतीहै। नोट, वट वृक्षोंका वेदान्तों में श्रवण. मनन. परन्तु
विना ब्रह्माकार वृत्तिप्रवाहके विना. सत्य. आत्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं
/ अन्य ब्रह्मका वृत्तिका अभ्यासकरेजानेका मन अपनी चंचलताको
त्यागदेताहै. चंचलताको त्यागकर स्थिर मन ब्रह्मरसका रस लेने
लगजाताहै. इसरस रसको विद्वानोंने ब्रह्मरस कहा है रसहै.
अपूर्व रसहै. अनुपम रसहै अखंड रसहै. इसरसको पाकर मनुष्य ऐसा
तृप्त होजाताहै ऐसे. जैसेकुबेर इन्द्रपदपानेसे सुखी प्रतीतहोताहै
आधिक्या क्या है ब्रह्मानंदपर ब्रह्मीभूत इच्छाकरती. इस रसको इन्द्रादिदेव
देवताभी इच्छाकरतेहै परन्तु पा नहीं सकते - कोटिमारिकालालटी ब्रह्माण्ड
को लातमारके उस अल्पधनसम्पदको प्राप्त कर सकताहै।
ब्रह्मानंद रस पीत्या. येन उन्मत्ता भोगीनः। | ऐसाजी - राम. नाम - रस पाम
इन्द्रोपि रंकु वद्भाति का कथा नृप कीटका.॥
मुद्रकामीनापतिचिंचुकवत स्वद्योतसम भास्वत्। मेरुपशुतिलोष्टवत्
कल्पद्रुतं कल्पं द्रुम काष्ठवत्। चिन्तारत्न मणि. शिलासकलवत पृथ्वी
पतिश्चत्यवत त्रैलोक्यं तृणा लवत. किमं हेतं स्वतंभावत।

छोड़े सर्वकी आशाको ब्रह्माकाध्यान। अत्यागसे कालहो पावेपद निर्वाण॥
पावेपद निर्वाण बंध चौरासी छूटे। ब्रह्मादिका पूज्यहोय अहमसुखलूटे
भोलाकहे धीरजगतसे नातातोड़े, अपने आपमें तृप्त सर्वकी आशा छोड़े।

दिनांक १८।६।६८ वेदान्ती केसरी
मालीकपुष्प.

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाधान - वेदान्त के शतों के पाठ करने से यह शंका बहुत लोग करते हैं कि वेदांत कथन मात्र से केवल मोक्ष होता है यानी ! परन्तु यह शंका केवल वेदान्त रहस्य न जानने वालों की है और वेदान्त चार्यों की तरफ से तात्पर्य ठीक से न समझने के कारण वेदान्त चार्य डबल डबल चोट ले करते हैं। कि जब तक अपरोक्ष ज्ञान का एक अंश भी ज्ञान नहीं होगा तब तक कल्पित दृश्य की निवृत्ति नहीं होगी और समस्त दृश्य के अधिष्ठान भूत आत्म तत्व का दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान तब तक नहीं होगा जब तक कि वैराग्य आदि साधन नहीं होते वैराग्य सम्पन्न होने पर आदि के बिना ज्ञान कथन मात्र से कुछ नहीं होता इसलिये शंका में लेकर वेदान्त के कथन मात्र से ही मोक्ष होता है ऐसा नहीं लेना चाहिये। महावाक्यों के कथन मात्र से ही मोक्ष नहीं होता। इत्यादि ज्ञान वाक्यों के कथन से केवल वाक्य ज्ञान मात्र से मुक्ति नहीं होती ऐसा समझना चाहिये। इत्यादि ज्ञान वाक्यों के कथन से केवल वाक्य ज्ञान मात्र से मुक्ति नहीं होती ऐसा समझना चाहिये। शमदमादि साधन संपत्ति युक्त अधिकारी को ही वाक्य जन्य ज्ञान उत्पन्न होता है।

इसलिये साधन सम्पन्न हो कर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु श्री से अपने आत्मा की उपेक्षा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों से पहले वृत्ति व्याप्त अपरोक्ष आत्म ज्ञान को प्राप्त होकर समस्त अनर्थ की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति रूप मोक्ष को पाता है।

(जीव)

सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म अविद्या ज्ञान चिदाभास सहित अन्तःकरण अध्यस्त है इसी का नाम जीव है। जब तक जीव सत्य महात्माओं के पास नहीं जाता तब तक शास्त्रों का श्रवण मनन नहीं करता तब तक अपने को देह मानता है देह से शुभ कर्म द्वारा सुख दुःख भोगता। जब बहुत पुण्य इकट्ठा होने से महात्माओं के सत्संग से अन्तःकरण शुद्ध होता और शास्त्रों का श्रवण मनन करता है तब आत्म विचार करने का अधिकारी होकर जीव अज्ञान को हटाता है और सद्ग्रही कहलाता है। तब ब्रह्म का अनुसन्धान करने से देह का अध्यास छूट जाता है और वह अपने को देहादि से भिन्न परिपूर्ण ब्रह्म ही देखता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वसिष्ठजी बोले हे रामजी ! आकाश तीन हैं एक चिदाकाश, दूसरा चित्ताकाश
तीसरा भूताकाश भावदेखे सामान्य रूप हैं और आप अपनी सत्ता है जो चित्ताकाश
है नित्य उपलब्ध रूप और चेतनमात्र सबके भीतर बाहर स्थित है अनुभाता
आश्चर्य और सब भूतों में व्यापक तारतम्य घट चिदाकाश है ।
जो सर्व भूतों का कारण रूप है और विकल्प रूप है और सब जगत का
जीवन विश्राम रूप वह चिदाकाश है ।
दश दिशाओं का विस्तार रूप जिसमें कुछ प्रच्छेद नहीं
तीनों शून्य स्वरूप है और एक आदि भूतों के आश्रय भूत है वह
भूताकाश कहा जाता है ।
हे रामजी ! चित्ताकाश और भूताकाश दोनों चिदाकाश से उपजते हैं
और सबके कारण हैं जैसे दिनसेसब कार्य होते हैं तैसे चित्त में
सब पदार्थ प्रकट होते हैं वह चित्त जड़ भी कहीं चेतन भी कहीं
आकाश भी उसी से उपजता है । हे रामजी ! तीनों आकाश भी अप्रबोध
के विषय हैं ज्ञानी के विषय नहीं । ज्ञानवान तीन आशय अज्ञानी के
उपदेश के निमित्त कहते हैं । ज्ञानवान को एक पर ब्रह्म पूर्ण सर्व कल्पना से
रहित भासता है द्वैत अद्वैत और शब्द भी उपदेश के निमित्त प्रबोध का
विषय कोई नहीं । हे रामजी जैसे तुम प्रबोध आत्मा नहीं हुए वैसे तुम
तीन आकाश हुए हो वास्तव में कोई कल्पना नहीं जैसे दावाग्नि से
जले वन जलकर शून्य भासता है तैसे ही ज्ञानाग्नि से जले हुए चित्ताकाश
और भूताकाश और चिदाकाश में शून्यकल्पना भासती है, मलीन चेतन
या चेतनता को प्राप्त होता है इससे मत जगत भासता है जैसे
स्वप्नान्तर जीव होते हैं तैसे मत में गन्धर्व नगर भासता है
जगत भासता है ऐसे असम्यक् दर्शी को जगत भासता है
और ज्ञानी को जगत भासता है आत्म तत्व नहीं भासता
य दृश्य भ्रम नष्ट हो जाने तब मुक्त पद है ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जन्म न हो / अनादिमत /

जिसका जन्म हो उसका नाम अनादिमत है और जो आदि भूत से विलक्षण हो याने इसका कारण न हो अर्थात जिसका जन्म न हो उसका नाम अनादिमत है भावार्थ यह है कि इस जगत का कारण पृथ्वी आदि पांच तत्व है और पंच भूतों से इस जगत की उत्पत्ति हुई है इसलिये जगत आदिमत है इन पंचभूतों में भी पृथ्वी का कारण जल है और जल का कारण तेज है और तेज का कारण वायु है वायु का कारण आकाश है आकाश का कारण अहंकार है अहंकार का कारण महत्तत्व है जो महत्तत्व का भी कारण है, अव्याकृत अथवा माया है पृथ्वी से लेकर पूर्व कथित तक कार्य कारण वाला यह जगत आदिमत है। और इस प्रकार से पृथ्वी लोक महत्तत्व माया आदि मानी गई है परन्तु अव्याकृत का आदिमत होना नहीं कहा गया उसे अनादिमत होने की शंका दूर करने के लिये भगवान ब्रह्मा इस विशेषण को देते हैं यह ब्रह्म परे याने अव्याकृत से भी परे है।

इंद्रियातीत भोगों से विरक्त हो इंद्रियों का मनसे मनसे पर बुद्धि बुद्धि से पर महत्तत्व है माने त्रिगुणात्मिका माया है। बुद्धि व्यष्टि बुद्धि से पर है समष्टि बुद्धि महत्तत्व से पर अव्यक्त याने अव्याकृत है अव्याकृत से पुरुष है। पुरुष से दुःख नहीं है पुरुष का कार्य है और पुरुष परागति है यहीं ब्रह्म ऐसा है इस प्रकार आत्मा असंग निर्विकार व्यापक ज्ञानघन, सच्चिदानन्द स्वरूप अरूप अच्छेद्य अभेद्य नित्य शुद्ध बुद्ध और मुक्त स्वभाव है

श्लोक श्रौतव्य श्रुति वाक्येभ्यो मन्तव्यश्चोपपत्तिभिः
मत्वातु सततं ध्येय एते दर्शन हेतवः।

अर्थात श्रुति वाक्यों से सुनने से (उपपत्तिभिः) युक्तियों से इसका मनन करने से मनन करने वाले नित्य ध्यान करने आत्म साक्षात्कार हुआ है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वेदान्त का अधिकारी

वेदान्त की बातें सुनकर बहुतसे मनुष्य यह कह बैठते हैं कि इनका विषय बहुत ही कठिन है। ये बातें हमारी समझ में नहीं आतीं। ऐसा कहना ठीक नहीं है। इन बातों का कोई न कोई अर्थ अवश्य होता है। वेदान्त संसार को मिथ्या बताता है। माता-पिता पुत्र स्त्री से नाता तुड़ाता है। सबसे विरक्त होने को कहता है। ऐसी सब बातें कि जो हमें अच्छी लगती हैं उन्हें निन्दा सहित बतलाता है।

परन्तु ऐसी बातें सुनकर जिज्ञासु को शीघ्रता से तीव्र मोक्ष की इच्छा वाला अथवा बातों का ध्यान न दे कुछ वेदान्त भाग के निन्दा भाव से नित्य नैमित्तिक कर्म अपने धर्म को अनुष्ठान करने लगता है यह अनुभव की बात है कि जिस्से जितना अल्प अनिष्ट होता है उतना जल्दी साधन के द्वारा ईश्वर का प्रसाद होता है। ईश्वर प्रसाद होते ही साधक के हृदय में विवेक आदि सब दैवी सम्पत्ति प्रसन्न होजाते हैं क्योंकि सब ईश्वर के अंश हैं जैसे कुसुम्भ के रंग में सने वस्त्र शीघ्र और सब रंगों से होजाते हैं ईश्वर की दैवी सम्पत्ति को प्राप्त होते ही साधक को भी प्रसन्नता होने लगती है। और जो वेदान्त के विवेक वैराग्य की दृढ़ता साधन सम्पदा के अनन्तर मनन और निदिध्यासन द्वारा अपने स्वरूप ब्रह्म का साक्षात्कार करते कृतकृत्य होजाते हैं।

विवेकी पुरुष कठिन नहीं है। संसार में दो वस्तु स्थिर नहीं। सब नाशवान् वा मिथ्या कहते हैं। इसलिये शब्दादि हटाने शब्दादि का ज्ञान भी हटाने से हटेगा। इसलिये शब्दादि का ज्ञान हटाने के लिये कुछ भी कठिनाई नहीं। जब इन्द्रियों को विषयों से हटाने की इच्छा हुई तब ही हटाने लगे। और जब तक हटते हैं तब तक आनन्द की प्राप्ति होती जाती है। उत्साह बढ़ता है। वेदान्त के विषय में विचार ही मुख्य है। साधन सम्पत्ति तो मन्द बातें वेदान्त की आवश्यक [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस देह के विषय में छः ऊर्मी तथा छः भावविकार प्रतीत होते हैं लेकिन
नहीं हैं. किन्तु उनसे भिन्न और निरपेक्ष अर्थात इच्छा रहित है।
तेरी शिष्य आशंका करता है, कि हे गुरो! छः ऊर्मी और छः भाव
आदि विकार का विस्तार पूर्वक वर्णन करो। तहां उक्त वर्णन करते हैं कि हे
शिष्य. क्षुधा. पिपासा (भूख प्यास) ये दो प्राण के ऊर्मी अर्थात धर्म है
शोक तथा मोह ये दो मन के ऊर्मी याने धर्म हैं।
जन्म - मरण ये दो देह की ऊर्मी हैं. याने धर्म हैं। ये छः ऊर्मी
हैं लेकिन नहीं हैं. इनसे अलग हैं।

अब छः भावविकारों का श्रवण करो।

जायते, अस्ति, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति.
ये छः भाव स्थूल देह के विषे रहते हैं. लेकिन नहीं हैं. तो-
उनका साक्षी अर्थात जानने वाला कौन है? तो सच्चिदानंद स्वरूप
शिव अर्थात सत्स्वरूप है वह अगाध बुद्धि अर्थात जिसकी
बुद्धि का पार नहीं है. ऐसा जो आत्मा अर्थात शिव
रहित है इसका विस्तार रहित लोक का चैतन्य रूप है।

(सम्यक् ज्ञान)

गुरुजी! सम्यक् ज्ञान क्या है. यदि मैं जानना चाहता हूं तो आप कृपा करके मुझे बताइये।
इंद्रियों का धर्म श्रम - थकावट है. प्राण का धर्म भूख प्यास है. मन का धर्म भय है, बुद्धि
का धर्म तृष्णा है. भाव यह है कि देह जन्म ताप मरता है. इन्द्रियां थक जाती हैं. मन
प्राण से लगते हैं मन भय करता है. बुद्धि का कहो जाय वह दूजा नाम संसार है. आत्मा
ऐसी तृष्णा होती है इनसे का नाम संसार है. आत्मा ने तीनों काल में संसार नहीं
यानी आत्मा में न तो जन्म है न मरण है. न भय है न प्यास है. न भय है न तृष्णा
आत्मा के ज्ञान से तुम को ये सब संसार के धर्म आत्मा में भासी अपने में प्रतीत
होते हैं. नहीं तो आत्मा में यह एक भी धर्म नहीं है इन धर्मों को तुम अपने में
मत मानो क्योंकि देहादि के ये धर्म हैं. ऐसा विचार करो. जब जब तुमको ये धर्म
अपने में प्रतीत हों तब तब अपने विचार द्वारा हटाते रहो. कुछ दिन ऐसा
अभ्यास करने से तुमको ये धर्म अपने में प्रतीत नहीं होंगे. किन्तु
देह में ही प्रतीत होंगे. ऐसा होने से तुम देह आत्मा अनात्मा विवेक होजायगा
विवेक होने से ही तुमको आत्म साक्षात्कार होजायगा अर्थात
तुम अपने को देह से भिन्न देखोगे कि मैं तुम हो। ऐसा होने से फिर तुम
अंतर्मुख निःशोक, निश्चिन्त अहीन और निर्भय होजाओगे फिर आजसे ऐसा
अभ्यास करना आरंभ करो दो तीन दिन में ही तुम को आनंद
होगा. कि तुम काया पलट दी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोक में श्रेष्ठ साधक को इतना कहते कि जहां काम तहं राम ना, जहां राम तहं काम ना।
इस कथन का अनुसार जहां भक्ति में कामना नहीं तब तहं ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती है
ईश्वर को इच्छित नहीं होता। तथा कथित कुछ मिल जाती है जैसा कि
स्वर्ग में कामना के कारण इन्द्र को लात जमा देते हैं
चर चमारी चूहरी सब नीचन से नीच, ऐसो पद पुरुषा यदि चाहत तो नीचन
गहे नाम कामकाटिहै. आशा इच्छा कामना चाह पुरुषार्थ को खाय
है।। ईश्वरीय प्राप्ति भी शांति की इच्छा वालों को चाह को छोड़ना चाहिये
(छोटी भक्ति में अहंभाव है मैं भक्त हूं ऐसा अभिमान है तब तक नहीं काम छूट सकता है न धर्म छूट सकता है।
न वासना निर्मूल हो सकती है हरि भक्ति का कथन है कि जिसको
इस देह में आत्मा नहीं है और देह के धर्म जन्म कर्म वर्ण क्षय तथा जाति
में जिसकी आसक्ति नहीं है वही हरि प्यारा है। माने जाति धर्म वर्ण
कुल आदि का अभिमान मानव से ये धर्म आत्मा के नहीं है
(ब्रह्म शुद्ध है माया से अनेक दिखते हैं)

असाढ़ की में बादल छाये थे रात्रि का समय था कुछ धुंधला सा अंधेरा था जहां
से दो रहा था। बिजली भी चमक चमक कर जाती थी उस समय मैंने माँ से
ठीक मालूम होता था। कि बादल ने ले मालूम हुआ। कि जब कुछ प्रकाश हो
और कुछ अंधेरा हो तब एक चीज के बदले दूसरी चीज दिखती है जैसे कि
अंधेरे में रस्सी में सर्प का भास को कि ईंट में मनुष्य का भास होता है पर
प्रकाश होने पर असली वस्तु यानी रस्सी और ठठ का ज्ञान होजाता है
इसी प्रकार ब्रह्म प्रकाश वान शुद्ध चैतन्य है परन्तु जब अज्ञान वश
माया का सङ्ग पड़ जाने से शुद्ध चैतन्य में नाना प्रकार के दृश्य
दिखाई देते हैं जैसा कि रस्सी के अज्ञान से सर्प दिखाई देता है अब
में प्रकाश शुद्ध है प्रकाश मात्र परिपूर्ण है एक ब्रह्म के अतिरिक्त
कुछ नहीं है।। जिस मोटे बेल के प्रकाश में बिजली का प्रकाश रत्ती
भर तक कुछ कुछ दिखता है मोटी प्रकाश गुल हुआ और बिजली का
थोड़ा प्रकाश भी कुछ अंधेरा रहने से तरह तरह के दृश्य नाना
प्रकार के दृश्य दिखाई देते हैं यही तो लुटेरा माया ठग है
शेर हाथी नाग तरह तरह के बिल्कुल यहां वहां में आते
जैसा प्रकाश में अंधेरा कुछ मिलकर दिखाई देता है सो ब्रह्म शुद्ध
प्रकाश रूप है अज्ञान रूप अंधेरे आने से जिसमें माया के असत्य
जैसा दिखता है। इसमें ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं है
आत्मा ही सर्वत्र है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समाधान. - शंका मायिनंतु महेश्वरम् इत्यादि श्रुतियों में माया को
श्रुति-प्रमाण
आश्रय ईश्वर कहा है - शुद्ध चैतन्य नहीं। इसके मत में भी
जीव को ईश्वर मानना तो प्राप्ति हुए भी नहीं हटते।
उक्त - श्रुति में अज्ञान आश्रय महेश्वर पद चैतन्य मात्र को
लक्षक है इसलिये शुद्ध चैतन्य माया का आश्रय है। तो प्रतिबिंब
श्रुति से बाधित है इसलिये माया में प्रतिबिंब का नाम ईश्वर
आवरण विक्षेप शक्ति विशिष्ट अविद्या में प्रतिबिंब जीव है।
ब्रह्म का प्रतिबिंब माया में पड़ने से ईश्वर और अविद्या में
पड़ने से जीव कहा जाता है। जीव अल्पज्ञ। ईश्वर सर्वज्ञ होते भी
दोनों तत्त्वमसि महावाक्य में स्थित त्वं पद और तत् पद का लक्ष्यार्थ
जीव और ईश्वर। तीनों की उपाधिरूप जो प्रपंच तिसको जेवरी में सर्प की न्याईं औ
ठौंठ में पुरुष की नाईं अज्ञान से जानके मिथ्या जानके त्याग कर
पर प्रपंच का विचार का उपयोग है।
जीव = चिदाभास युक्त अन्तःकरण साक्षित्व द्वारा चैतन्य जो जीवित है।
ईश्वर = चिदाभास युक्त माया सहित ब्रह्म चैतन्य सो ईश्वर है।
प्रपंच = समष्टि और व्यष्टि रूप तीन शरीर पंचकोश तीन अवस्था आदि रूप प्रपंच कहते हैं
मैं जो (त्वं पद का लक्ष्यार्थ) आत्मा। सो (तत् पद का लक्ष्यार्थ ब्रह्म
शुद्ध ब्रह्म = उत्पत्ति रहित वस्तु स्वरूप से अनादि है ऐसे शुद्ध ब्रह्म।
प्रश्न शुद्ध ब्रह्म विषै प्रपंच का आरोप कैसे हुआ?
उत्तर = अनादि शुद्ध ब्रह्म विषै अनादि काल्पित प्रकृति तिस प्रकृति का ब्रह्म
के साथ अनादि काल्पित तादात्म्य सम्बंध है कहिये काल्पित भेद सहित
वस्तु अभेद रूप सम्बंध है आरोप।
आरोप - ब्रह्मरूप वस्तु विषै अज्ञान तत्कार्य अवस्तु का ध्यान आरोप है
अनादि - उत्पत्ति रहित वस्तु स्वरूप से अनादि है। ऐसे शुद्ध ब्रह्म। प्रकृति
जिनका सम्बंध ईश्वर। जीव और तिनका भेद
काल्पित। जो होवे नहीं और स्वप्न पदार्थ की नाईं भासे सो
प्रकृति। काल्पित है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति माया, और अविद्या औ तमः प्रधान प्रकृतिरूप कहीं कहीं पायते हैं
जो शुद्ध सत्वगुण युक्त सो माया है। और मलीन सत्वगुण युक्त अविद्या है
और जो तमोगुणकी मुख्यताको युक्त है सो तमः प्रधान प्रकृति है।
(१) मायाविषे जो ब्रह्मका प्रतिबिम्ब है सो अधिष्ठान ब्रह्म, और मायासहित
जगत्कर्त्ता सर्वज्ञ ईश्वर कहिये
(२) अविद्या विषे जो ब्रह्मका प्रतिबिम्बपरे अधिष्ठान (कूटस्थ) और अविद्या
सहित भोक्ता अल्पज्ञ जीव है। सो ईश्वर और जीवभी अनादि व्याख्या तें

पंचकोशके विषय

कोश
(१) अन्नमय (२) प्राणमयकोश (३) मनोमयकोश (४) विज्ञानमयकोश (५) आनंदमयकोश।
अन्नमय कोश | माताके उदरविषे उत्पन्न होताहै
माताने खाया जो अन्न, तिसतें भया जो रजवीर्य। तिसकरी जो
। फिर जन्मे अन्नना क्षीरादिक अन्नकरी है जो वृद्धि पावता है
। फिर मरण के अनंतर अन्नमय पृथ्वी विषे लीन होताहै।
। ऐसा जो स्थूल देह = अन्नमय कोश है।
। यह अन्नमयकोश सुरदुरवे अनभवहे भोगका स्थान है
प्रश्न - अन्नमयकोशतें मैं न्यारा हूं मत कैसे जानता?
उत्तर = जन्मतें प्रथम मरणतें पीछे अन्नमयकोश स्थूलशरीररूप अभावतें
यातें यह उत्पत्ति नाशवान होनेतें घटादि जैसे जड है। और
। मैं तो भानरूप हूं तातें उत्पत्ति नाशरहित होनेसे इसतें विलक्षण हूं।
यातें यह अन्नमयकोश मैं नहीं और मेरा नहीं यह स्थूल देहरूप है मैं नहीं
इसका जानने हारा आत्मा इससे न्यारा है। इसरीतिसे मैं न्याराहूं।
(२) प्राणमयकोश — पांच कर्मइंद्रियों सहित पांच प्राण सो प्राणमय कोश है
क्रमतें — पांचप्राणके स्थान और क्रिया कहते हैं।
उत्तर = प्राणवायु — हृदय स्थानमें रहताहै। दिशागमन २१६०० श्वास उच्छ्वास
अपानवायु — गुदास्थानविषे रहता है और मलमूत्र त्यागादि क्रिया करता है
समान — नाभिस्थानमें रहताहै और जैसे रूप जलको खेंचीमूंदे विषे
" मालीदीन्हें भोजनादिमें अन्नको रसदोषादि करके नाडी द्वारा
सर्वशरीरादिमें पहुंचावेहै। यह भी कहताहै
उदानवायु — कंठस्थानविषे रहताहै खाएपीए अन्न जलको
यह कहताहै। इत्यादि प्रकार [illegible]
आदि [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्यानवायु - सर्वांगस्थान विषे रहता है। और सर्व अंगनकी सांधेचु फेरने रूप क्रिया कू करता है।

इसरीतिसें - पांचप्राण के मुख्यस्थान और क्रिया कहे।

प्राणादिवायु शरीरादिमें क्या होते ?

प्राणादिवायु सो शरीर विषे पूर्णतोषकू शरीरकू बल देते हैं और इंद्रियनकू आपआपमें स्वस्वादि विषे प्रवृत्तिरूप क्रियामें साधन होते हैं।

प्रश्न - प्राणमयकोशतें मैं न्यारा हूं यह कैसें जाना

उत्तर - निद्राविषय दुःख सोयाती वे तब प्राण जागता है तो बी कोई नहीं जानता। तिसका स्मरण कू नहीं। तातें यह प्राणमय कोश के तिसकूं निषेध करना नहीं। तातें यह प्राणमय कोश मैं नहीं। जड़ है और चैतन्य मुझ इसतें विलक्षण है। इसतें प्राणमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं। यह सूक्ष्म देहरूप है। मैं इसका जाननेवाला हूं। इसरीतिसें प्राणमयकोशतें मैं न्यारा हूं।

प्रश्न - मनोमयकोश कया है

उत्तर - पांच ज्ञानेंद्रियासहित मन - सो मनोमयकोश है।

श्रोत्र, त्वक्, जिव्हा और ~~[illegible]~~ प्राण, चक्षु ये पांच ज्ञानेंद्रियां

प्रश्न - मन - कया है

उत्तर - देह विषे अहंता और गृहादिकादिके ममतारूप अभिमान कू करता हुआ इंद्रियां द्वारा बाहिर गमन करता हुआ क्षणरूप है।

प्रश्न - मनोमयकोशमें मैं न्यारा हूं यह किसरीतिसें जानना

उत्तर - काम क्रोधादि दोषें युक्त होते मन नियमरहित ~~[illegible]~~ स्वभावतः है, तातें विकारी है और मैं सर्व वृत्तिका साक्षी निर्विकार हूं, यातें यह मनोमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं। यह सूक्ष्म देहरूप है। मैं इसका जाननेहारा आत्मा इसतें न्यारा हूं। इसरीतिसें मनोमयकोशतें मैं न्यारा यह जानना

प्रश्न - विज्ञानमयकोश कया है

उत्तर - पांचज्ञानेंद्रियसहित बुद्धि। सो विज्ञानमय कोश है

प्रश्न - बुद्धि कैसी है

उत्तर - सुषुप्तिविषे चिदाभासयुक्त बुद्धि विलीन होवे है और जागृत विषे बुद्धि के अग्रभाग से लेके शरीरपर्यंत सारीविषे व्याप्ति रहती है इसी कारणतें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रश्न - विज्ञानमय कोश में मैं न्यारा हूं? यह कैसे जानता हूँ

उत्तर: बुद्धि धारि द्वयी-मांई विलय आदि अवस्थावाली होने से विनाशी है
ओं में विलय आदि अवस्था रहित होने से इसे तो विलक्षण अविनाशी है
यातें यह विज्ञानमय कोश मैं नहीं ओं मेरा नहीं यह सूक्ष्म देहरूप है
मैं इसका जानने वाला आत्मा इससे न्यारा हूं विज्ञानमय कोशतें मैं न्यारा
हूं यह जानना।

प्रश्न - आनन्दमय कोश क्या है?

उत्तर - पुण्यरूप फल के अनुभवकाल विषै कारण बुद्धि की वृत्ति अज्ञानरूपी
दुःखी आत्मस्वरूपमूल आनन्द के प्रतीकिम्को भजती है ओं जो प्रिय
मोद प्रमोद रूप कहिये हैं। सो ही पुण्यकर्म फल के भोग की निवृत्ति
के हुये निद्रारूप तें मिलीन होवे हैं। सो वृत्ति आनन्दमय कोश है

प्रश्न - आनन्दमय कोष कैसा है?

उत्तर - इष्ट वस्तु के दर्शन में उत्पन्न प्रिय वृत्ति जिसका शरीर है ओं
इष्ट वस्तु के लाभ तें उत्पन्न मोद वृत्ति जिसका (क्षीण) पक्ष है।
ओ - इष्ट वस्तु के भोग तें उत्पन्न प्रमोद वृत्ति जिसका द्वितीय नाम
(धाम) पक्ष है। ओं बुद्धि का अज्ञान वृत्ति विषै आत्मस्वरूप
मूल आनन्द को प्रतिबिम्ब जिसका स्वरूप है। ओं बिम्ब रूप
आत्मा का स्वरूपमूल आनन्द जिसका पुच्छ (आधार) है।
ऐसा पक्षीरूप मेरा आनन्दमय कोश है

प्रश्न - आनंदमय कोश तें मैं न्यारा हूं यह किस रीति से जानता हूं

उत्तर - आनन्दमय कोश नाद्यल आदि वस्तु की न्यांई क्षणिक होने
बोलने से यातें क्षणिक है ओं मैं सर्वदा स्थित होने से नित्य हूं
यातें यह आनन्दमय कोश मैं नहीं ओं मेरा नहीं यह कारण देहरूप है
मैं इसका जानने वाला आत्मा इससे न्यारा हूं इस रीति से आनन्दमय
कोशतें मैं न्यारा हूं यह जानना

प्रश्न - आत्मा ——— कैसा है?

उत्तर - सत् चित् आदि आनन्द आदि स्वरूप है।

(विद्यार्थी चन्द्रोदय)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासनाक्षय.

जीवन मुक्ति के साधनों को निरूपण करते हैं तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय उनके साधन हैं। (तत्व)

हे महामते! यह वासनाक्षय विज्ञान और मनोनाश एक समान काल में सिद्ध होते हैं। चिरपर्यन्त मानी दीर्घकाल तक अभ्यास किये हुए फल देने वाले होते हैं। यह तीनों साधन बारम्बार एक साथ जब तक न अभ्यास किये जावें तब तक भी पद की सम्यक् प्राप्ति नहीं होती। तत्त्वज्ञान, मनोनाश और वासनाक्षय भी एक दूसरे के परस्पर कारण हैं इसलिये उनकी पृथक् पृथक् स्थिति सफल नहीं होती।

जब तक मन विलीन न हो जाय तब तक वासना नष्ट नहीं होती है जब तक वासनाक्षीण न हो तब तक चित्तशांत नहीं होता है।

मनोनाश (मन निग्रह)

जिसका मन वाला हुआ दुष्ट तृष्णा बिना अंकुश के नीला नहीं जाती है। इसलिये बिना युक्ति के मन जीता नहीं जाता इस्य उपाय के योग से युक्ति से भी मन निग्रह नहीं होता।

इसके दो भेद हैं अभ्यास और वैराग्य। आत्मज्ञान। साधु समागम, वासनाओं का सम्यक् परित्याग, और प्राणों के स्पन्दन का रोध अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास ये चार उपाय हैं।

चित्तरूपी वृक्ष के दो बीज हैं प्राण स्पन्द और वासना दोनों में से एक के नाश से शीघ्र दोनों का नाश हो जाता है। (इनदोनों के नाश के उपाय को करते हैं — प्राणायाम के दृढ़ अभ्यास से और गुरु भगवान की कृपा से, आत्म और अपने अभीप्सित साधन योग शास्त्रों का सम्यक् निश्चय होता है। निर्दोष बुद्धि से (हृदय ग्रंथि टूटती है इस प्रकार) सम भाव से त्याग से हृदय के नाश होने से जन्म से वासना उदय नहीं होती।

इस सृष्टि को करने वाले [redacted] ईश्वर के चलने के लिये तीन स्थान हैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति। जाग्रत अवस्था में उसका निवास दाहिने आँख में, स्वप्न अवस्था में मन के भीतर, और सुषुप्ति में सब हृदय में होता है इन्हीं तीनों अवस्थाओं को स्वप्न, जाग्रत दोनों स्वप्न कहते हैं क्योंकि यह भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सभी जीव अज्ञानमें पड़े रहते हैं इनकी निवास स्थानों में वरुणादि
चिकित्सक आकर्षण करके आदेश करते हैं वहां रहते
और अनेक प्रकार के अनर्थों से पीड़ित होकर भी वहीं जागता है।

(अध्यात्म-काशी) काशिसिद्धान्त निर्णय. सप्त। ३५-३६

श्लोक: "भ्रुवोर्घ्राणस्य यः सान्धः" इत्युवाच याज्ञवल्क्यः।
अत्र घ्राण शब्देन घ्राणवायु प्रचारकं घ्राण मूलमुच्यते।
ज्ञानेन्द्रियाधिकरणे दे। दोनों भौंहों के बीच जो मिलने का स्थान है
उसीका नाम वाराणसी है। भ्रुवों का अर्थ है घ्राण मूल जहां से
घ्राण वायु उठती है। दोनों भौंहों के बीच नासिका का सबसे ऊपर
हिस्सा ये तीनों जहां मिलते हैं उसी स्थान का नाम
वाराणसी है इस आत्मारूपी प्राण को मूल से ले पद्मपद प्राप्त
होता है इसके अन्य प्रमाण हैं मैंने गये हैं।
श्लोक वाराणसी भ्रुवोर्मध्ये मर्वि मुक्तेश्वरो भुवः।
अध्यात्मेवागतादृष्टं तद् भ्रुवो घ्राणस्य चानाम॥
दोनों भौंहों के नासिका के ऊर्ध्व भाग में मिलने की जगह का नाम
वाराणसी है। यह आधिभौतिक है अध्यात्मिक काशी है। इस
अध्यात्मिक काशी में निवास करने से जीव को मुक्ति मिल-
जाती है। अर्थात आध्यात्मिक भ्रूमि में आज्ञा चक्र में प्राणों
के शरीर में विद्यमान है चित्त के करने से जीव को मुक्ति मिलती है
श्लोक — प्रयाण काले मनसाचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
गीता च १० भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक् सतं परं पुरुष मुपैति दिव्यम्।
जो मनुष्य प्रयाण त्याग के समय निश्चल मन से दृढ़ भक्ति से साथ
योगबल के द्वारा दोनों भौंहों के बीच प्राणों को प्रवेश कराता है उसे
दिव्य परम पुरुष अमृत पद को प्राप्त होता है।
तात्पर्य आध्यात्म काशी का उद्देश्य यही होता है इसलिये
श्री विश्वनाथ जी ज्ञानवापी को साक्षात मूला आदि पुरी विराजते
हैं और श्री कालभैरव जी रक्षा करते हैं इसकाशी में प्राण त्याग से पुन
मोक्षरूपी प्राप्ति होती है इसलिये इस काशी का अवश्य सेवन करना चाहिये

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रवण - मनन - निदिध्यासन

श्रवण - वेदान्त की पुस्तकों को सुनना श्रवण कहलाता है

मनन - जैसे चटनी देशमदी सुखकारी है ऐसी श्रवण की हुई उसको एकान्त में बैठकर चिन्तवन करे (पूर्व पक्ष फलादि दोष पृथक् करे) इसी का नाम मनन है।

निदिध्यासन - जैसे बाजार में ऐसे में बैठा हुआ अनजान आदमी आकर कहे कुछ नहीं मालूम हुआ ऐसे जो मनन करके भी संशय रहता है उसको निदिध्यासन से मिटाते हैं जैसे देह आत्मा है मन-बुद्धि और अज्ञान का साक्षी कूटस्थ है वही निदिध्यासन है

श्रवण से अज्ञान का नाश होता है।

मनन से - संशय का नाश होता है।

निदिध्यासन से - विपर्यय का नाश होजाता है। वही मुक्ति का हेतु है।

रुद्राक्ष महिमा - चारों वर्ण के लिये है

वाल्मण - सर्व रुद्राक्ष। क्षत्रिय लाल वैश्य पीला, शूद्र काला

बन्ध और मोक्ष प्रकरण मतावलम्बी रत्नावली पृष्ठ २१ में देखो।

इसमें बन्ध मोक्ष अच्छी तरह कहा है। जैसे तन्निवृत्तिर्मोक्षः

उस अभिमान की निवृत्ति होना ही मोक्ष है अर्थात् हृदय से आत्मा के अलग समझना मात्र है। आत्मा का नाश ही मोक्ष

मिथ्यात्व का निश्चय ही मोक्ष है। अर्थात् जो सब दिखता है मिथ्या है

(यति सम्बन्धी)

निवृत्तेन्द्रियग्रामो यत्र यत्र वसेद्यतिः

तत्र तत्र तु तस्यैव नैमित्तं पुण्यं तथा

जिसने अपने इन्द्रिय ग्राम को जीत लिया है वह यति जहां जहां रहता है वहां वहां उसके लिये तीर्थ पुण्य है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(गंगादी महिमा)

गंगा तोय मुपस्पृश्य मिथ्यायदि वदेद्वचः ।
सयाति कालसूत्रा वैवोत्रसणो नयः ॥१॥

सूत्रं च वक्ष्ये वह्नो

गंगेदेवि जगद्धात्री पादाभ्यां सलिलं तव ।
स्पृशामीत्यपराधं मे प्रसहनाक्षन्तु महेसि ॥

स्वर्गारोहण त्वो यानं त्वदीय मुदकं शुभे ।
अतः स्पृशामि पादाभ्यां गंगे देवि नमो नमः ॥

तत्सतु मस्तके धृत्वा गांगेयं वारि भाक्तितः
स्नानार्थं प्रार्थयेत् प्राज्ञो गंगेति कृति मंत्र ॥

यात (सन्यासी) सम्बन्धी

ब्रह्मचारी सह स्त्रंच वानप्रस्थ शतानिच ।
ब्राह्मणानान्तु कोटास्तु यतिरेको विशिष्यते

निशेष महत्व ख्यापनार्थं ।

द्वे रूपे वासुदेवस्य चलं चाचल मेवच
चलं सन्यासिनोरूपं चलं प्रतिमादिकम् ।

यातिर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य मुक्ते स्वयं हरी ।
हरीर्यस्य गृहे भुंक्ते तस्य भुंक्ते जगत्त्रयं ॥

अर्थ- जिस के यति भोजन करते वह तीनों लोक भोजन करते : जहां हरी भोजन करें वहां तीनो लोक भोजन करते ।

भक्षार्थं हस्ते जलं दद्यात भिक्षा दद्यात पुनर्जलम ।
तद्भेदं भेक्षणा तुल्यं तज्जलं नागतो यथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ भगवन्नाम - संकीर्तन का महत्व ॥

भगवन्नाम कीर्तन में कोई शर्त नहीं शर्त मानने वालों का निजी विश्वास है बहुत से लोग कहते हैं जब भगवन्नाम कीर्तन से सब दोष कटते जब बड़े बड़े पापी तर जाते हैं तो और कार्य क्यों करें। सन्यासादि को अपना निजधर्म की क्या आवश्यकता यह बातें तो ठीक समझ में आती हैं कि श्रीभगवान में प्रेम होना चाहिये जिसे सच्चे भाव से अनुराग होगा उसे फिर दूसरा कोई भी धर्म करने की आवश्यकता नहीं किन्तु आदर्श पूर्ण अनुराग आना कठिन है। आप दैवयोग भगवान का नाम लेने लग जाते हैं। अर्थात् अपनी स्त्री पशु पुत्र पुत्री में जो आसक्ति है आदि में भगवान में आप हटा लेते हैं पुत्रों में अपने पुत्रों से अधिक लेते हैं तब बड़े बड़े धनी विना उपार्जन किये हुये अपने अनुचरों को पहिले की भांति मान मर्यादा से लाद चालते हैं। दोनों में यही एक बड़ी बातें हैं जब ये सब कट जाते तब स्वधर्म उद्धार भी कठिन नहीं है। जब इतने से त्रिगुण तीन मात्र भगवन्नाम ही अनुराग हो। भगवन्नाम ही उच्च गुण है। तब स्वधर्म पालन भगवन्नाम कीर्तन को छोड़ के और कुछ नहीं करना चाहिये। स्वधर्म पालन आवश्यक धर्म है क्योंकि सबके कर्तव्य पृथक पृथक हैं। भगवन्नाम कीर्तन में अधिकार नहीं। उसे तो जो प्रीति लगेगा वही पार होगा।

यहां पर लिखना इतना ही है। अपना स्वधर्म का पालन करते हुए भगवन्नाम कीर्तन अधिक उपयोगी होगा। और महत्व की बात है। कि स्वधर्म पालन करने वालों का कीर्तन करना निष्फल है उसका मतलब इतना ही है। कि जान बूझ कर तुम अपने स्वधर्म को मत छोड़ो क्योंकि ऐसा करने से स्वच्छाचार होजायगा। यदि तुम २४ घंटे भगवन्नाम कीर्तन ही किया करो तब तो भले ही और किसी धर्म की आवश्यकता नहीं। किन्तु आपने भगवन्नाम के बल से अपना धर्म छोड़ दिया और अधर्म में प्रवृत्त हो गये तो आप कुमार्ग से कुछ भी निकल न भी सकेंगे। यदि विद्वत्तावश स्वधर्म का पालन नहीं और स्वधर्म पालन में अन्तर्गत होजाते हैं। कुछ अंश भगवन्नाम कीर्तन का भी आश्रय लेते तो तुम्हारा पतन नहीं होगा। किन्तु जो सकाम कर्मी को छोड़ना कठिन है और भगवन्नाम नहीं लेते तो उसका पतन सुनिश्चित है। रामनाम अंकुश है। साधन शून्य जैसे खिजीने खिलौने ६०/ रुपये की अंकुश फेंक दिया तो उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। वही खिजीने शून्य को भिटा दिया तो कुछ पैसे तुम नौकर से तोड़ लेगी।

सारांश - स्वधर्म के साथ कीर्तन की आवश्यकता अवश्य है। दोनों को पहिले छोड़ने की नहीं। मनुष्य मोक्ष साधन में भी भोग और ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है। वैराग्य को ज्ञान बताया है। जब दोनों साधन पहुंचे तब ही होगा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जिसका ज्ञान में अधिकार है

जप-तप क्रियासे पार जिसके सर्व दुःख होगये।
कामादि से जो मुक्त है, दंभादि जिसके खो गये।
निश्चय जिसे है होगया संसार से निस्सार है।
शम दम दया से युक्त उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(२)
ना भोग जिसके ऐंठते, ना शोक मन में अंगरे। कैसी सुहानी वस्तु है, नर लोग मन उपजाय है
है वस्तु सच्ची कौनसी, जिस वस्तु माहीं सार है, उस वस्तु को तो खोजे, उसका ज्ञान में अधिकार है

(३)
सब भांति का सामर्थ्य है, अरु प्राप्त सब ही भोग है। फिर भी न रुचते भोग हैं मालूम होते रोग से
वस्त्रादि का ऐश्वर्य भी जिसके लिये रद्दभार है, जो चाहता न समो इस उसका ज्ञान में अधिकार है

(४)
मन खिन्न बहला है सदा, रुचता जिसे ना भोग है। ना अड़ है ना तड़ है, जीवसे दुखाना यों गये।
मनशांत होने का, हिमाकता सदा व्यापार है। फिर भी न मनतोशांत, उसका ज्ञान में अधिकार है

(५)
रुचता न भोजन है जिसे, मन मा फिरे भरमा रहे। रुचता नहीं है चाहता, हो खिन्न फिर खिन्न है
धनधान सुत ना चाहता, रुचता नहीं घरबार है। संतप्त की है खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है

(६)
संसार हीसे दुःखमय, सुख का नहीं वाला पता। सुख है कहां इस सोच में निद्रा दुई है ना पता।
मल्लाह बिन ज्यों नाव, चक्षु खो रहे मझधार है। त्यों बुद्धि व्याकुल होय, उसका ज्ञान में अधिकार है

(७)
वित्त वित्त
है वेद्य दो पढ़ लिये, वेदाङ्ग भी हैं पढ़ लिये। सब शास्त्र पढ़ कर अंध उनके चित्त में हठ घर लिये
अबलक कहीं भी बुद्धि ने पाया नहीं आधार है। जाना नहीं है वेद्य, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(८)
गाना सगुण है ब्रह्म, पर निर्गुण अभी जाना नहीं, यह दृश्य के जे हो सका। यह भेद पोथी में नहीं
की अर्चना है भावना, बहु विध जपा ओंकार है। भोला दुआती मन शुद्ध, उसका ज्ञान में अधिकार है

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भस्म महिमा - लिङ्ग पुराण

विना भस्म त्रिपुंड्रेण विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोपि महादेवो नतत्फलदीभवेत्॥
अर्थ - बिना भस्म और त्रिपुण्ड्र के और रुद्राक्ष माला धारण किये एवं बिना पूजा करने से महादेव फल नहीं देते हैं।

आयुः कामो यशः कामो राजन् भूतिकामोऽथवा नरः।
नित्यं कुर्यादिदं स्नानं भोग मोक्ष कामी च वानरः॥
आयु चाहने वाला, महान ऐश्वर्य चाहने वाला या मोक्ष की इच्छा करने वाला मनुष्य तो उसे चाहिये कि वह अस्त्र धारण करे। यह श्लोक पढ़ कर भस्म को ॐ तत्पुरुषाय ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥

अर्घ्य पात्र घृत रज्जु वामुपस्थ स्वकुशान, स्वकीजादु गृहस्वकाकाली इजीले स्वर्ग तटे सवर्ती इसका ली भाषिप वेगवती। एक मन एकटा।

यथा नद्यो नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम्॥
त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः।
अयुक्तैः पाप पुण्यैरिहैव फलमश्नुते॥
यत्रनार्यस्तु पूज्यन्तेरमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रा फलाः क्रिया॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानाञ्च पूजनम् ।
वैश्यदेवं तथातिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने ॥ इत्यादि

स्नान सन्ध्या जप देवता औ का पूजन, वैश्वदेव और
अतिथि सत्कार ये ६ कर्म नित्य करने चाहिये ।

दौर्भाग्य = एकादशी अमावस्या चतुर्दशी पूर्णिमा संक्रान्ति
मासिक व्रत आदि के दिन रवि मंगल तथा शनि को
औ प्रातः सन्ध्या के समय स्त्री का स्पर्श
स्नान करे औ सोमवार को [illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri